॥ श्रीः ॥

अथ राजयोगान्तर्गतः-

बिन्दुयोगः ।

मुरादाबादनिवासि पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत-

भाषाटीकासमलंकृतः ।

स च

खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रागारे

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

संवत् १९६२, शके १८२७.

भूमिका।

मनुष्यके निमित्त यदि कोई शांतिका उपायहै तो यह योग है, इस योगविद्याके अनुष्ठानसे मनुष्यके त्रिविध ताप दूर होजातेहैं, इसके दो भेदहैं राजयोग और हठयोग, हठयोग विना गुरुके सिद्ध नहीं होता, राजयोगके अनुष्ठाता क्वचित २ प्राप्त होतेहैं, तथा इसकी श्रेणी मनुष्योंको मन इन्द्रियके जय करनेसे प्राप्त होनेलगतीहै, जिनके द्वारा यह मनुष्य परमपुरुषार्थ करताहुआ मुक्तितकको प्राप्त होसकताहै. योगशास्त्रके बहुतसे ग्रन्थ हैं जिनके सम्यक् अवलोकनसे योगशास्त्रकी महिमा विदित होतीहै, परन्तु विना अनुष्ठानके देखनेसे क्या होताहै, जबतक अनुष्ठान न होगा कोई कार्य सिद्ध न होगा, आत्माकी उन्नति अन्तःकरणमें प्रकाशकी इच्छावालोंको अवश्यही योगानुष्ठान करना चाहिये. इस समय योग २ पुकारते तो अनेक देखे जातेहैं, पर योगानुष्ठान करनेवाले कोई बिरलेही हैं, इससे जो दर्शनहैं उनका अनुष्ठान करना चाहिये, यह "बिन्दुयोग" एक छोटासा ग्रन्थ राजयोगान्तर्गतहै, इसको हम राजयोगका

भूमिका ।

प्रारंभिक ग्रन्थ कहसकतेहैं, इस छोटेसे ग्रन्थके अनुशीलन और तदनुकूल आचरणसे मनुष्यकी आत्मामें अतिशय शान्ति होसकतीहै बहुत कहनेसे क्याहै जिनको संसारके जीवनमरणरूप रोगोंका भयहै, उनके इस भयको दूर करनेके निमित्त यह योगविद्याही परमौषधिहै ।

यह ग्रन्थ पुराना लिखाहुआ अप्रकाशित हमको "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी महाशयद्वारा प्राप्त हुआ, उन्हींकी आज्ञासे इसे शुद्ध कर भाषाटीके सहित अलंकृत कियाहै और उन्हींको सर्व स्वत्वसहित समर्पण करदियाहै ।

योगशास्त्रके अनेक गहन विषय इसमें बडे सरल सुबोध लिखेहैं इसके पढने और मनन करनेसे योगशास्त्रके प्रेमियोंको बहुत कुछ लाभ होगा यह मुझे दृढ आशाहै ।

९।१०।०१ } सज्जनोंका अनुगृहीत,
मुरादाबाद } पं० ज्वालाप्रसादमिश्र.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ राजयोगान्तर्गतः–

बिन्दुयोगः।

भाषाटीकासहितः।

दोहा–योगाचार्य मुनीनको, प्रेमसहित शिरनाय ।
बिन्दुयोगकी अतिसरल, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥

क्षमा विवेकं वैराग्यं शान्तिः सन्तोषनिष्पृहा ।
एतद्युक्तियुतो योगी क्रियायोगी निगद्यते १॥

क्षमा सत्यासत्यका ज्ञान संसारके पदार्थोंसे विराग, चित्तमें शान्ति, सन्तोष अनिच्छा जिसके हो इससे युक्त हुआ योगी क्रियायोगी कहलाताहै १

मात्सर्यं ममता माया, हिंसा च मदगर्विता ।
कामक्रोधभयं लज्जा लोभमोहौ तथा शुचिः २॥

मत्सरता ममता (मोह) माया, हिंसा (किसी के चित्तको दुखाना) मद अभिमान, काम, क्रोध, भय, लज्जा, लोभ, मोह, पुत्रधनमें प्रीति तथा अशुचि (अपवित्रता) ॥ २ ॥

रागद्वेषौ घृणालस्यं भ्रान्तित्वं मोक्षमाभ्रमः ।
यस्यैतानि च विद्यन्ते क्रियायोगी स उच्यते ३

रागद्वेष घृणा आलस्य भ्रान्ति मोक्षमें भ्रान्ति अर्थात् अविश्वास जिसमें इतनी वस्तु नहींहैं उस का नाम क्रियायोगी कहा जाताहै यदि इनके न होतेभी योगी बनै तौ वह दम्भ जानना ॥ ३ ॥

यस्यान्तःकरणे क्षमाविवेकवैराग्यशांति-
सन्तोषादीन्युत्पद्यन्ते ॥

जिसके अन्तः करणमें क्षमा विवेक वैराग्य शान्ति सन्तोष आदि प्रगट होतेहैं ॥

स एव बहुक्रियायोगी कथ्यते । कापत्यं वित्तं हिंसा तृष्णा मात्सर्यम् अहंकारः रोषः क्षयं लज्जालोभमोहा अशुचित्वं पाखंडत्वं भ्रान्तिः इन्द्रियविकारः कामः एते यस्य मनासि प्रतिदिनं न्यूना भवन्ति । स एव बहुक्रियायोगी कथ्यते ॥

वह बहुत क्रिया योगी कहाताहै, कपट धनका लोभ हिंसा तृष्णा मात्सर्य अहंकार रोष क्षय लज्जा लोभ मोह अपवित्रता पाखण्ड भ्रान्ति

इन्द्रियविकार काम यह जिसके मनसे प्रतिदिन न्यून होतेहैं वही बहुक्रिया योगी कहा जाताहै ।

इदानीं राजयोगस्य भेदाः कथ्यन्ते ॥ ते के एकः सिद्धकुण्डलनीयोगः । मंत्रयोगः । अस्तु राजयोगः कथ्यते । मूलकन्दस्थाने एका तेजोरूपा महानाडी वर्त्तते । इयमेक नाडी । इडा पिंगला सुषुम्णा एतान् भेदान् प्राप्नोति । वामभागे चन्द्ररूपा इडा नाडी वर्त्तते । दक्षिणभागे सूर्यरूपा पिंगला नाडी वर्त्तते । मध्यमार्गेऽतिसूक्ष्मा पद्मिनी तंतु-समाकारा कोटिविद्युत्समप्रभा भुक्तिमुक्ति प्रदाऽस्या ज्ञानोत्पत्तौ सत्यं पुरुषः सर्वज्ञो भवति ॥

अब राजयोगके भेद कहतेहैं वह कितनेहैं उनमें एक सिद्ध कुण्डलनी योग, मंत्रयोगहै, जो हो अब राजयोग कहतेहैं, मूल कन्दस्थानमें एक तेजरूपा नाडीहै यह एक नाडीहै इसमें योग करनेवाला एक योगी कहाताहै यह एक नाडीही इडा पिंगला सुषुम्णा इन तीन भेदोंको प्राप्त होतीहै वाम-भागमें चन्द्ररूपा इडा नाडी वर्ततीहै दक्षिणभागमें

सूर्यरूपा पिंगला नाडी वर्ततीहै मध्यभागमें अति-सूक्ष्म कमलिनीके तन्तुकी समान कोटि विद्यु-तकी समान प्रभावाली भुक्ति मुक्ति दायकाहै इसमें ज्ञानोत्पत्ति होतीहै इसके योगसे पुरुष सर्वज्ञ होताहै ।

इदानीं सुषुम्णायां ज्ञानोत्पत्तावुपायाः कथ्य-न्ते ॥ आदौ चतुर्दलं मूलं चक्रं वर्त्तते । प्रथ-ममाधारचक्रं वर्त्तते । गुदास्थानं रक्तवर्णं गणेशदैवतं सिद्धिबुद्धिशक्तिमूषकवाहनम् कूर्म ऋषिः । आकुंचमुद्रा । अपानवायुः चतुर्दलेषु रजःसत्त्वतमोमनांसि । वं शं षं सं मध्यत्रिकोणे त्रिशिखात्तन्मध्ये त्रिकोणा-कारं कामपीठं वर्त्तते ॥

अब सुषुम्णामें ज्ञानउत्पत्तिके उपाय कहतेहैं आदिमें चतुर्दल मूलचक्रहै पहला आधारचक्र है गुदाके स्थानमें है लालवर्ण गणेश देवता सिद्धि बुद्धिसे शक्तिके सहित ध्यान करने योग्यहै मूषक वाहन कूर्म ऋषिहै, आकुंचन मुद्राहै, अपान वायुहै चारों दलोंमें रज सत्त्व तम मनहै वं शं षं सं अक्षर युक्तहै, मध्यत्रिकोणमें त्रिशिखायुक्त त्रिकोणके आकार कामपीठ विद्यमानहै ।

तत्पीठमध्येऽग्निशिखाकारैका मूर्तिर्वर्त्तते । तस्याः मूर्तेर्ध्यानकारणात् सकलशास्त्र काव्यनाटकादिसकलवाङ्मयं विनाभ्यासेन पुरुषस्य मनोमध्ये स्फुरति, इदानीं द्वितीयं स्वाधिष्ठानचक्रं षड्दलं उपायनपीठसंज्ञकं भवति ॥

उस शिखाके मध्यमें अग्निके शिखाकी समान प्रकाशमान एक मूर्तिहै उस मूर्तिके ध्यान करनेसे सब शास्त्र काव्यनाटकादि तथा सम्पूर्ण वाङ्मय शास्त्रादि अभ्यासके विनाही पुरुषके मनमें स्फुरायमान होतेहैं दूसरा अधिष्ठानचक्रहै वह छः दलयुक्त उपायनपीठ संज्ञावालाहै यह चक्र कमल नाडियोंद्वारा बने हुएहैं वही अक्षर रूपहै वायु और तेजके द्वारा मूर्ति और वर्ण झलकताहै ।

तन्मध्ये अतिरक्तवर्णं तेजो वर्त्तते । तस्य ध्यानात् साधकोऽतिसुन्दरो भवति । युवतीनां वल्लभो भवति । प्रतिदिनमायुर्वर्धते । तृतीये नाभिस्थाने दशदलं पद्मं वर्त्तते तन्मध्ये पंचकोणं चक्रं वर्त्तते॥तन्मध्ये एका

मूर्तिर्वर्तते । तस्यास्तेजो जिह्वया कथयितुं न शक्यते । तस्याः मूर्तेर्ध्यानकारणात्पुरुषस्य शरीरं स्थिरं भवति ॥

इसके मध्यमें अधिकतर लालवर्णका तेज वर्तताहै उसके ध्यानसे साधक अतिसुन्दर होजाता है अतियुवा और स्त्रियोंका प्यारा होताहै प्रतिदिन आयु बढतीहै, तीसरे नाभिके स्थानमें दशदलका कमलहै उसके मध्यमें पांचकोणचक्र विद्यमानहै उसके मध्यमें एक मूर्तिहै जिह्वा उसका तेज नहीं कह सकती उस मूर्तिके ध्यान करनेसे पुरुष का शरीर स्थित होताहै ।

चतुर्थं हृदयमध्ये द्वादशदलं कमलं वर्तते । अतितेजोमयत्वाद्दृष्टिगोचरं न भवति तन्मध्येऽष्टदलमधोमुखं कमलं वर्त्तते ॥ तन्मध्ये प्राणवायोः स्थानमष्टदलकमलमध्ये लिंगाकारा कर्णिका कथ्यते । तस्याः कर्णिकेति संज्ञा तत्कर्णिकामध्ये पद्मरागसमानवर्णाऽङ्गुष्ठप्रमाणैका पुत्तलिका वर्त्तते ॥

चौथा हृदयके मध्यमें द्वादशदलका एक कमल है वह अति तेजोमय होनेसे दृष्टिगोचर नहीं होता

उसके मध्यमें अष्टदल अधोमुख कमलहै उसीके मध्यमें प्राणवायुका स्थानहै अर्थात् अष्टदलकमल के मध्य लिङ्गाकार कर्णिकाहै उसकी कर्णिका संज्ञा है उस कर्णिकाके मध्यमें पद्मरागमणिकी समान वर्णवाली अंगुष्ठ प्रमाण एक पुत्तलीहै।

तस्या जीवसंज्ञा तस्या बलमध्यस्वरूपं कोटि जिह्वाभिर्वक्तुं नैव शक्यते। अस्या मूर्तेर्ध्यानकारणात्स्वर्गपातालाकाशमनुष्यगन्धर्वकिन्नरगुह्यकविद्याधरलोकसम्बन्धिन्यः स्त्रियोऽपि वश्या भवन्ति। इत्यत्र कथ्यते। पञ्चमं कण्ठस्थाने षोडशदलं कमलं वर्तते॥

उसीकी जीव संज्ञाहै उसका बल और स्वरूप कोटि जिह्वाभी नहीं कह सकती इस मूर्तिके ध्यान करनेसे स्वर्ग पाताल आकाश मनुष्य गन्धर्व किन्नर गुह्यक विद्याधर लोकसम्बन्धी स्त्रियैं वशीभूत होतीहैं यह इसमें कहाहै। पांचवें कंठस्थानमें सोलह दलका कमल विद्यमानहै

तन्मध्ये कोटिसूर्यसमान एकः पुरुषो वर्तते। तस्य पुरुषस्य ध्यानकारणादसाध्यरोगा नश्यन्ति॥

इसमें कोटिसूर्यकी समान प्रकाशवान् एक पुरुषहै उस पुरुषके ध्यान करनेसे असाध्य रोगभी नाश होजातेहैं ।

एकसहस्रवर्षपर्यंतं स पुरुषो जीवतीदानीं षष्ठं भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रं वर्तते । द्विदलं तन्मध्येऽग्निज्वालाकारकमलं किंचिद्वस्तु वर्तते । न स्त्री पुमान्। तस्य ध्यानकारणात्पुरुषस्य शरीरमजरामरं भवति ॥

एकसहस्र वर्षपर्यंत वह पुरुष जीताहै अब भ्रूमध्यमें छठे आज्ञाचक्रको कहतेहैं वह दो दलके मध्य में अग्निज्वालाकारकमल संयुक्त कोई वस्तु वर्तमानहै वह न स्त्रीहै न पुरुष उसके ध्यान करनेसे पुरुषका शरीर अजर अमर होताहै ।

इदानीं सप्तमं तालुमध्ये चतुःषष्टिदलं अमृतपूर्णं वर्तते । अधिकशोभायुक्तमतिश्वेतं तन्मध्ये रक्तवर्णं घांटिकासंज्ञैका कर्णिका वर्तते । तन्मध्ये भूमिः । तन्मध्ये प्रकट चन्द्रकलाऽमृतधारा भवति ।तस्याःकलाया ध्यानकारणात्तस्य समीपे मरणं नायाति । निरन्तरध्यानादमृतधारायाः सजीवो

भवति । तदा यक्ष्मरोगपित्तज्वरहृदयदाह शिरोरोगजिह्वाजडभावा नश्यन्ति । भक्षितमपि विषन्न बाधते । यद्यत्र मनः स्थिरं भवति ॥

तालुके मध्यमें चौंसठ दलवाला अमृतसे पूर्ण एक कमलहै वह अधिक शोभासे युक्तहै अतिश्वेतहै उसके मध्यमें लालवर्ण कंटिकासंज्ञक एक कर्णिकाहै उसके मध्यमें भूमिहै उसके मध्यमें प्रगट चन्द्रकला अमृतरूपहै उसके ध्यान करनेसे इस पुरुषके समीप मृत्यु नहीं आती निरन्तर ध्यान करनेसे अमृतधारा पडतीहै इससे वह सजीव रहताहै उस समय यक्ष्मरोग हृदयदाह पित्तज्वर शिरोरोग तथा जिह्वा जडभावसे रहित होतीहै वह यदि विषभक्षण करले तौभी इसको विषकी बाधा नहीं होती, यदि इसमें मन स्थिर हो जाय तौ क्या कहनाहै ।

इदानीं ब्रह्मरन्ध्रस्थानेऽष्टमं शतदलं चक्रं वर्त्तते । तस्य कमलजात्यधरणीपीठ इति संज्ञा । सिद्धपुरुषस्य स्थानम् । तन्मध्येऽग्निधूमाकाररेखाथा दृश्यादृश्येका पुरुषस्य मूर्त्तिर्वर्त्तते । तस्यानादिर्नांतोऽस्ति । तस्या

मूर्त्तिध्यानकारणात्प्रत्यक्षं निरंतरं पुरुषस्याकाशे गमागमौ भवतः। पृथ्वीमध्ये स्थितस्यापि पृथ्वीबाधो न भवति। सकलान् प्रत्यक्षं निरंतरं पश्यति च पृथग्भवति। अतिशयेनायुर्वर्धते।

अब ब्रह्मरंध्र स्थानमें जो आठवां सौदलका चक्रहै उसको कहतेहैं उसकी कमलजातधरनीपीठ संज्ञाहै वह सिद्ध पुरुषका स्थानहै उसके बीचमें अग्निधूमाकार रेखावत् दृश्यादृश्य एक पुरुषकी मूर्तिहै उसका आदि अन्त नहींहै उस मूर्तिके ध्यान करनेसे प्रत्यक्ष निरन्तर इस पुरुषका आकाशमें गमनागमन हो सकताहै पृथ्वीमें स्थित होकरभी इसको पृथ्वीके पदार्थोंसे बाधा नहीं होती सब वस्तुओंको निरन्तर प्रत्यक्ष देखताहै और इसकी आयु अधिकतर बढ जातीहै।

इदानीं नवमचक्रस्य भेदाः कथ्यन्ते। तस्य महाशून्यचक्रमिति संज्ञा। तदुपर्यपरं किमपि नास्ति। तदेव महासिद्धचक्रं कथ्यते। तस्य पूर्णागिरिपीठ एतादृशं नाम। तस्य महाशून्यचक्रस्य मध्ये ऊर्ध्वमुखमति-

रक्तवर्णं सकलशोभास्पदमनेककल्याण-
पूर्णं सहस्रदलमेकं कमलं वर्त्तते । यस्य
परिमलो मनसो वचसो न गोचरः ॥ तस्य
कमलस्य मध्ये त्रिकोणरूपैका कर्णिका
वर्त्तते ।

अब नवम चक्रके भेद कहतेहैं इस चक्रकी
महाशून्य संज्ञाहै इसके ऊपर कुछभी नहीं है
इसीको महासिद्धचक्र कहतेहैं इसका पूर्णगिरि-
पीठ नामहै इस महाशून्य चक्रके मध्यमें ऊर्ध्व-
मुख अतिलालवर्ण सब शोभाका स्थान अनेक
कल्याणपूर्ण सहस्रदल एक कमलहै जिसकी गन्ध
मनवचनके अगोचरहै उसकमलके मध्यमें त्रिको-
णरूपा एक कर्णिकाहै ॥

तत्कर्णिकामध्ये सप्तदशी निरंजनरूपा
कला वर्त्तते । कोटिसूर्यसमप्रभं कलाया-
स्तेजो वर्त्तते। परमुद्भवो नास्ति । कोटिच-
न्द्रसमप्रभाशीतलं परं शीतभावो नास्ति ।
अस्याः कलाया ध्यानयोगात्साधकस्य
मनसि दुःखं न भवति । तदुपरि अनंतपर-
मानन्दस्य स्थानम्। तत्रोर्ध्वशक्तिः । एता-

ईदृशी संज्ञा एका कला वर्त्तते । अस्याः कलाया ध्यानकारणात् पुरुषो यदिच्छति । तस्य सुखभोगवतः स्त्रीमध्ये विलासवतः संगीतविलासवतः विनोदप्रेक्षावतः पुरुषस्य प्रतिदिनं शुक्लपक्षे चन्द्रकलावत् कला वर्द्धते । पुण्यपापेऽस्य शरीरं न स्पृशतः । निरन्तरध्यानकारणात् निजस्वरूपं प्रकाशनसामर्थ्यं भवति । दूरस्थोपि च दूरस्थवस्तु समीप इव पश्यति ॥

उस कार्णिकामें सत्रहवीं निरञ्जनरूपा एक कलाहै उस कलाका तेज कोटिसूर्यकी समानहै परन्तु इस तेजोरूपका उद्रव नहींहै इसकी प्रभा कोटिचन्द्रकी समान शीतलहै परन्तु शीतभाव नहीं है इस कलाके ध्यान करनेसे साधकके मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं होता इसके ऊपर अनन्त परमानन्दका स्थानहै उसमें ऊर्ध्वशक्ति निवास करतीहै इस प्रकारकी संज्ञावाली एक कलाहै इस कलाके ध्यान करनेसे पुरुष यदि इच्छा करै तो उसको सुखभोग स्त्रियोंके मध्यमें बिलास संगीत विलास विनोदकी इच्छासे

विनोद प्राप्त होतेहैं इस पुरुषकी कला शुक्लपक्षके चन्द्रकी समान प्रतिदिन बढतीहै पुण्य पाप इसके शरीरको नहीं छूते कारण कि निरन्तर ध्यान करताहै अपने स्वरूपके प्रकाशकी सामर्थ्य बढ-तीहै दूरमें स्थितभी दूरकी वस्तुको समीपवत् देखताहै ॥

इदानीं सुखसाध्यो लक्ष्ययोगः कथ्यते। अस्य लक्ष्ययोगस्य पंच भेदा भवन्ति ऊर्ध्वलक्ष्यम्। अधोलक्ष्यम् । लक्ष्यम् । बाह्यलक्ष्यम् । अंतरलक्ष्यम् । प्रथममूर्ध्वलक्ष्यं कथ्यते । आकाशमध्ये दृष्टिः।कदा च मनऊर्ध्वं कृत्वा स्थापयति।एतस्य लक्षस्य दृढकरणात्परमे-श्वरस्य तेजसा सह दृष्टेरैक्यं भवति । अथ चाकाशमध्ये यःकश्चिददृष्टः पदार्थो भवति स साधकस्य दृष्टिगोचरो भवति ॥

अब सुखसाध्य लक्ष्य कहतेहैं, योगका वर्णन करतेहैं जिस लक्ष्य योगके पांच भेदहैं ऊर्ध्वलक्ष्य, अ-धोलक्ष लक्ष्य बाह्यलक्ष्य, अन्तरलक्ष्य पहले ऊर्ध्वल-क्ष्य कहतेहैं आकाशमध्यमें दृष्टि लगाये मनकोऊर्ध्व करके वहीं स्थापन करना इस लक्ष्यके दृढ करनेसे परमात्माके तेजके साथ दृष्टिकी एकता होतीहै

२

और आकाशमें जो कुछभी दृष्ट पदार्थहैं वह साधकके भली प्रकार दृष्टिगोचर होजातेहैं ॥

अयमेवोर्ध्वलक्ष्यः नासिकायाः उपरि द्वादशांगुलमूलपर्यन्तं दृष्टिः स्थिरा कर्त्तव्या। अथवा नासिकाया अग्रे दृष्टिः स्थिरा कर्त्तव्या। लक्षद्वयस्य दृढीकरणात् । दृष्टिः स्थिरा भवति। पवनः स्थिरो भवति। आयुर्वर्द्धते। एतद्द्वयमपि बाह्यलक्ष्यमेव भवति बाह्यांतर आकाशे शून्यलक्ष्यः कर्त्तव्यः। जाग्रद्दशायां चलनदशायां भोजनदशायां स्थितिकाले सर्वस्थाने शून्यस्य ध्यानकारणात् ॥

फिर ऊर्ध्वलक्ष्यमें नासिकाके ऊपर द्वादश अंगुल मूलपर्यन्त दृष्टि करनी चाहिये फिर नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि स्थिर करै। इन दोनों लक्ष्योंके दृढ करनेसे दृष्टि स्थिर होजातीहै पवन स्थिर होजातीहै आयु बढतीहै यह दोनोंही बाह्य लक्ष्य भीहैं बाह्य अन्तरमें आकाशहो तो शून्य लक्ष करना चाहिये जागृत दशा चलनेकी दशा भोजनदशा स्थितिके समय सब स्थानमें शून्य ध्यानके

करनेसे स्थिरता प्राप्त होतीहै कोई विकार नहीं रहताहै ॥

इदानीं राजयोगयुक्तस्य शरीरे यच्चिह्नं तत्कथ्यते। तत्सर्वत्र पूर्णो भवति। पृथिव्याः दूरे तिष्ठति। पृथिव्यां व्याप्य तिष्ठति। यस्य जन्ममरणे न स्तःसुखं न भवति।कुलं न भवति। शीतलं न भवति।स्थानं न भवति। अथ सिद्धस्य मनोमध्य ईश्वरसंबंधी प्रकाशो निरंतरं प्रत्यक्षो भवति। स च प्रकाशो न शीतो न चोष्णो न श्वेतो न पीतो भवति। तस्य न जातिर्न किञ्चिच्चिह्नम्। अयं च निष्कलो निरंजनः अलक्ष्यश्च भवति। अथ च फलद्वंद्वे न कामिन्यादेर्यस्येच्छा न भवति॥

अब राजयोगयुक्त पुरुषके शरीरके चिह्न कहतेहैं वह अंगोंसे सर्वत्र पूर्ण होताहै पृथ्वीकी गुफामें रहताहै पृथ्वीमेंभी व्याप्त होके रहता उसके जन्म मरण नहीं होता सुख दुःख नहीं रहता कुल नहीं होता शीतल नहीं होता स्थान नहीं होता, और सिद्धके मनमें निरन्तर ईश्वरसम्बन्धी प्रकाश होता है और वह प्रकाश प्रत्यक्ष होताहै,वहप्रकाश न ठंढा

न गरम न श्वेत न पीतहै, न उसकी जाति न कोई चि-ह्नहै यह निष्कल (कलारहित) निरंजन और अलक्ष होताहै, और किसी प्रकारके फल तथा द्वंदादि, भी नहीं होते । और कामिनी आदिकीभी उसको इच्छा नहीं होती ॥

अन्यद्राजयोगस्य चिह्नं कथ्यते । यस्य राज्यादिलाभेऽपि फललाभो न भवति । हानावपि मनोमध्ये दुःखं न भवति । अथ च तृष्णा न भवति । अथ च कस्मिन् पदार्थस्योपर्यनिच्छा न भवति कस्मिन् पदार्थे मनसोनुरागो न भवति । अयमपि राजयोगः कथ्यते । अथचः यस्य मनः मुनिविद्वत्पुरुषेषु मैत्रे च समं भवति । दृष्टिश्च समा भवति । सकलपृथ्वीमध्ये गमनवतः सुखभोगवतः यस्य मनसि कर्त्तृत्वाभिमानो नास्ति । अथ च लोकमध्ये कर्तृत्वं न ज्ञापयति।सोपि राजयोगःकथ्यते॥

औरभी राजयोगके चिह्न कहतेहैं, जिसको राज्यादिके लाभमें भी कुछ फललाभ नहीं होता हानिसेभी मनके बीचमें कुछ दुःख नहीं होता।

न कोई तृष्णा होतीहै। न किसी पदार्थमें अनिच्छा होतीहै किसी पदार्थका मनमें अनुरागभी नहीं होता. अब फिर राजयोग कहतेहैं जिसका मन मुनि विद्वान पुरुषोंमें शत्रु मित्रोंमें समान होताहै समान दृष्टि होतीहै सब पृथ्वीमें गमन करने और सुख भोगसे जिसके मनमें कर्तृत्वपनका अभिमान नहीं होताहै और लोकमें अपना कर्तापन विख्यात नहीं करता अर्थात् किसी कर्ममें जिसके कर्तापनका अभिमान नहींहै वहभी राजयोग कहा जाताहै उसका करनेवाला राजयोगी होताहै॥

नवीनानि पट्टसूत्रमयधृतानि वस्त्राणि अथवा जीर्णानि छिद्राणि धृतानि कस्तूरीचन्दनलेपैर्वा कर्दमलेपेन यस्य मनसि हर्षशोकौ न स्तः। स एवात्र तिष्ठति। यस्य जन्ममरणे न स्तः सुखं न भवति। कुलं न भवति शीलं न भवति। स्थानं न भवति। राजयोगः नरमध्ये अथ च वनमध्ये युद्धे संग्राममध्ये वा यस्य मनः भयपूर्णं वा न भवति। सोपि राजयोगः कथ्यते॥

नवीन पट्टसूत्रके वस्त्रधारण करनेसे अथवा

पुराने फटे धारण करनेसे कस्तूरी चन्दन लेप अथवा कीचके लेपनसे जिसके मनमें हर्ष शोक नहीं होताहै जो निश्चल रहताहै जिस को जन्म मरण नहीं संसारी सुखका अनुभव नहीं कुल नहीं शील नहीं स्थान नहीं किसीकी अभि- लाषा नहीं वह राजयोगयुक्तहै मनुष्योंमें वनमें वा संग्राममें जिसका मन भयसे युक्त नहीं होता वह भी राजयोग युक्त कहा जाताहै ॥

इदानीं योगः कथ्यते। निराकारो नित्योऽभेद्यः स एतादृशः आत्मनि मनो यस्य निश्चलं तिष्ठति। तस्यात्मनः पुण्यपापस्पर्शो न भवति। उदकमध्ये स्थितस्य पद्मपत्रे यथोदकस्य स्पर्शो न भवति। तथैवात्मानि यथाकाशमध्ये पवनः स्वेच्छया भ्रमति। तथा यस्य मनः निराकारमध्ये लीनं भवति। स एव चर्यायोगः॥

अब योग कहतेहैं निराकार नित्य अभेद्य इस प्रकारसे आत्मामें जिसका मन निश्चल होकर स्थितहै उसके आत्मामें पुण्य पापका स्पर्श नहीं होता जैसे जलमें स्थित पद्मपत्रका जलसे स्पर्श

नहींहै इसी प्रकार आत्मामें पापपुण्यका स्पर्श नहीं होता जैसे आकाशमें पवन स्वेच्छासे भ्रमतीहै इसी प्रकार जिसका मन निराकारमें लीनहै उसी का नाम चर्यायोग है ॥

इदानीं ग्रहयोगः कथ्यते । रेचकपूरककुम्भक इत्यादि प्रकारेण पवनसाधनं कर्तव्यम् । अथ च धौत्यादिषट्कर्मकारणात् शरीरस्य शुद्धिर्भवति। सूर्यनाडीमध्ये पवनः पूर्णो यदा तिष्ठति। तदा मनो निश्चलं भवति। मनसो निश्चलत्वेन आनन्दरूपं प्रत्यक्षं भासते । हठयोगकारणात् मनः शून्यमध्ये लीनं भवति । कालः समीपे नागच्छति ॥

अब ग्रहयोग कहतेहैं रेचक पूरक कुंभक इत्यादि प्रकारसे पवनका साधन करना चाहिये धोती नेती आदि षट्कर्मसे शरीरकी शुद्धि होती है सूर्यनाडीके मध्यमें जब पूर्ण पवन स्थित होताहै तब मन निश्चल होताहै मनके निश्चल होनेसे आनन्दरूप प्रत्यक्ष भासमान होताहै हठयोगके करनेसे मन शून्यमें लीन होताहै इसकारण कालके समीपमें नहीं आता ॥

इदानीं हठयोगस्य द्वितीयो भेदः कथ्यते । पादादारभ्य शिरःपर्यंतं स्वशरीरे कोटिसूर्यतेजःसमानं श्वेतं पीतं रक्तं किंचिद्वर्णं चिन्त्यते । तद्ध्यानकारणात्सकलं रोगज्वलनं भवति । आयुर्वर्धते ॥

अब हठयोगका दूसरा भेद कहतेहैं चरणोंसे लेकर शिरपर्यंत अपने शरीरमें कोटिसूर्यके तेज समान श्वेत पीत रक्त कोई वर्ण चिन्तन किया जाताहै उसके ध्यान करनेसे सब रोग नष्ट होते आयु बढतीहै ।

इदानीं ज्ञानयोगस्य लक्षणं कथ्यते । एकमेव जगत्पश्येद्विश्वावसुविभास्वरम् । अविकल्पतया युक्त्या ज्ञानयोगं समाचरेत् ॥ १ ॥

अब ज्ञानयोगका लक्षण कहतेहैं; इसप्रकारसे अग्निकी समान भासमान इस जगतको देखै तथा विकल्परहित निश्चल युक्तिसे ज्ञानयोगका आचरण करै ॥ १ ॥

यत्र यत्र स्थितो वापि सर्वज्ञानमयं जगत् । स एवं वेत्ति बोधेन सोपि ज्ञानाधिकारणात् ॥ २ ॥

जहां कहीं भी स्थिति होइस जगत्को जो अपने बोधसे ज्ञानरूप जानताहै वहभी ज्ञानप्राप्तिका कारण है ॥ २ ॥

एकान्तं नैकदा स्वेन दृश्यते दशधा कृतः।
मूलाङ्कुरस्य चोद्दण्डाःशाखाकुण्डलपल्लवाः ३

एकान्त अर्थात् इकलाही वह निज तेजसे दश प्रकारका दीखताहै मूल अंकुरकेही सब उद्दण्ड शाखा और पल्लव कुण्डल होतेहैं ॥ ३ ॥

स्नेहपुण्यफलं बीजे विस्तरोयं स्वभावतः। तथासौ निर्मलो नित्यो निर्विकारो निरंजनः॥४॥

स्नेह पुण्यफल बीजमें स्थित है विस्तार होना उसका स्वभाव है इसीप्रकारसे यह निर्मल नित्य निर्विकार और निरंजन है जैसे बीजजलादिसे विस्तार पाताहै ऐसे आत्मा कर्मसे देहादिमें गमन करताहै ॥ ४ ॥

एकोनेकः स्वयंभूश्च धाम्ना च बहुधा स्थितः।
पंचतत्त्वमनोबुद्धिमायाहंकारविक्रियाः ॥ ५ ॥

वह स्वयंभू एकही अनेक होकर अनेकधाममें स्थित होताहै पंचतत्त्व पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि माया अहंकार विकार ॥ ५ ॥

एवं दशविधं विश्वं लोकालोकसविस्तरम् ।
एक एव न चान्योस्ति यो जानाति स तत्त्ववित् ॥ ६ ॥

इसप्रकार लोकालोकमें यह विश्वरूप दशप्रकारसे विस्तृत होरहाहै वह एकही है दूसरा नहींहै ऐसा जो जान्ताहै वह तत्त्वज्ञाता होताहै ॥ ६ ॥

पृथ्वीवनस्पतिपर्वतादिस्थावररूपः संसारःमनुष्यहस्त्यश्वपक्षीत्यादिको जंगमरूपः संसारः ॥

पृथ्वी वनस्पति पर्वतादि स्थावररूप संसारहै मनुष्य हाथी घोडा पक्षी इत्यादि जंगमरूप संसार है ।

अथ च यो दृष्टिविषयः स दृश्य उच्यते । यो दृष्ट्या न वीक्ष्यते स अदृश्य इत्युच्यते । एवं संसारस्य स्वात्मनो भेदं दूरीकृत्यैकमेवदर्शनं स एव ज्ञानयोगः । तस्य कारणात् कालः शरीरनाशं न करोति । इदानीं तस्यभेदः कथ्यते । यथा वटबीजम् । वटरूपेण परिणतं सत् दशधा भेदं

स्वभावत एव प्राप्नोति । मूलांकुरत्वग् दण्डशाखाकलिकापल्लवपुष्पफलस्नेहा इति दश भेदान् प्राप्नोति ॥

इनमें जो दृष्टिगोचर होताहै उसको दृश्य कहतेहैं और जो दृष्टिसे नहीं दीखता उसको अदृश्य कहतेहैं । इसप्रकार संसार और आत्माके भेदको दूर करके एकही दर्शनका नाम ज्ञानयोग है उसके कारणसे कालशरीरका नाश नहीं करताहै इससमय उसका भेद कहतेहैं जैसे वटबीज वटरूपसे परिणामको प्राप्त होताहै अर्थात् यह स्वभावसेही दशभेदको प्राप्त होताहै मूल, अंकुर, त्वचा, दण्ड, शाखा, कलिका, पत्ते, फूल, फल, स्नेह यह दशभेदोंको प्राप्त होताहै ।

यथा निर्मलो निर्विकारः निरंजन एक एतादृश आत्मा स्वभावादेव । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशमनोबुद्धिमायाविकाररूपभेदान् प्राप्नोति । ज्ञानयोगप्रभावादेक एव आत्मा इति निश्चयो भवति यथैकैव पृथ्वी क्वचित्कोमलरूपा क्वचित्कठोररूपा क्वचित्परिमलरूपा क्वचित्परिमलरूपर-

हिता क्वचित्सुवर्णरूपा क्वचिद्रौप्यरूपा क्वचिद्रत्नमयी क्वचिच्च श्वेता क्वचिद्रक्ता क्वचित्पीता क्वचित्कर्बुरा क्वचिन्नानाविधरूपा क्वचिद्विषरूपा क्वचिदमृतरूपमयी स्वभावत एव भवति ॥

इसीप्रकार निर्मल निरंजन निर्विकार एक ऐसा आत्मा स्वभावसेहीहै पृथ्वी अप तेज वायु आकाश मन बुद्धि माया विकाररूप भेदोंको प्राप्त होताहै ज्ञानयोगके प्रभावसे एकही आत्माहै ऐसा निश्चय होताहै जैसे एकही पृथ्वी कहीं कोमल कहीं कठिनरूप कहीं सुगन्धित कहीं परिमल रूपरहित कहीं सुवर्णरूप कहीं रौप्यरूप कहीं रत्नमयी कहीं श्वेत कहीं रक्त कहीं पीत कहीं कबरी कहीं अनेक प्रकारकी रूपवाली कहीं विषरूप कहीं अमृतरूपवाली स्वभावसेही होतीहै।

तथैवात्मा मनुष्यपक्षिहरिणहस्तिविद्याधरगन्धर्वकिन्नरमहापंडितमहामूर्खरोग्यरोगिक्रोधिशांतरूपः स्वभावादेव भवति । ज्ञानयोगाधिकाररूपरहितो ज्ञायते । यथा प्लक्षस्योत्पत्तिः । स्थानमेव भवति ॥

इसीप्रकार आत्मा मनुष्य, पक्षी, हरिण, हस्ती, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, महापंडित, महामूर्ख, रोगी, अरोगी, क्रोधी, शान्तरूप स्वभावसेही होताहै ज्ञानयोगाधिकारसे रूपरहित जाना जाताहै जैसे पिलखन की उत्पत्ति होतीहै, स्थान एक होताहै।

अथ च फलस्य गतिर्बहुधा दृश्यते। एकं फलं पृथ्वीमध्ये पतति। शुष्कं भवति। एकस्य फलस्य मकरंदं भ्रमरः पिबति। एकस्य फलस्य मालां कामिनी तुंगकुचमंडलोपरि दधाति। एकं फलं मृतमनुष्योपरि क्षिप्यते। अयं वस्तुनः स्वभावः। तथा एकएवात्मा स्वीयभावादेवाष्टौ भोगान् भुनक्ति। के तेष्टौ भोगाः—सुवासश्च सुवस्त्रञ्च सुशय्या सुनितंबिनी। सुस्थानश्चान्नपानानि अष्टौ भोगाश्च धीमताम्। पट्टसूत्रमयानि वस्त्राणि॥

और फलकी गति बहुत प्रकारकी दीखती है पृथ्वीमें एक फल पतित होताहै। शुष्क होताहै,

एक फलके मकरन्दको भौंरा पीजाताहै एकके फूलोंकी मालाको कामिनी अपने ऊंचे कुचौंके मध्यमें धारण करतीहै किसीका फल मरेहुए मनुष्योंपर बखेराजाताहै । यह वस्तुओंका स्वभाव हीहै ऐसेही एक आत्मा अपने स्वभावसे आठ भोगोंको भोगताहै वे आठ भोग येहैं सुवास, सुवस्त्र, सुशय्या सुनितम्बिनी, सुस्थान, सुअन्न, सुन्दर पान, बहु-मूल्य वस्तु यह बुद्धिमानोंके आठ भोग हैं पटसे सूतके वस्त्र लेने ।

पंचसप्ताट्टालिकायुक्तानि हर्म्याणि तेषु वासः अतिविपुला मृदुतरसुखा सुशय्या । पद्मिनी तारूण्यवती मनोहरा गुणवती तत्रोपविष्टा कांता । साधु आशनम् । अतिमूल्यश्च । मनोरममन्नं ।तथाविधं पानम् । एतेष्टौ भोगाः कथिताः ।एके दुःखं भजन्ते । भिक्षां याचन्ते॥

पचमहले सतमहले भवनोंमें निवास अतिविपुल कोमल सुखदायक शय्या पद्मिनी युवा मनोहर गुणवती स्त्रीकी प्राप्ति सुन्दर अतिमूल्यके आसन मनोरम अन्न सुन्दर पानीय यह आठ भोग कहेहैं कोई दुःख भोगतेहैं कोई भिक्षा मंगतेहैं ।

किञ्च यथा सूर्यस्य तेजः दुग्धस्य घृतमग्नेर्ज्वलनं विषान्मूर्छा तिलात्तैलम्। वृक्षाच्छाया। फलात्परिमलःकाष्ठादग्निःशर्करादिभ्यो मधुरो रसः। हिमानीभ्यः शीतमित्यादिपदार्थानां स्वभावः तथा संसारोऽपि परमेश्वरस्वरूपमध्ये तिष्ठति। परमेश्वरोऽखण्डपारिपूर्णः। इदानीं लक्ष्यं कथ्यते। नासाग्रादारभ्यांगुलचतुष्टयप्रमाणं नीलाकारं तेजः पूर्णमाकाशं लक्ष्यं कर्त्तव्यम्। अथवा नासाग्रादारभ्य षडंगुलप्रमाणं पवनतत्त्वं धूम्राकारं लक्ष्यं कर्त्तव्यम्॥

और जैसे सूर्यका तेज, दुग्धमें घृत, अग्निमें उष्णता विषमें मूर्छा तिलमें तेल वृक्षमें छाया फलमें सुगन्धि काष्ठमें अग्नि शर्करादिमें मधुर रस हिममें शीत इत्यादि पदार्थोंका स्वभाव है इसीप्रकार संसारभी परमेश्वरके स्वरूपमें स्थित होताहै परमेश्वर अखण्ड परिपूर्ण है अब लक्ष्य कहतेहैं, नासाके अग्रभागसे आरंभ करके चार अंगुल प्रमाणतक नीलाकार पूर्ण आकाश लक्ष्य करना चाहिये अथवा नासिकाके अग्रभागतक आरंभकरके छः अंगुल

प्रमाण पवनतत्त्व धूम्राकारका लक्ष्य करना चाहिये ।

अथ वा नासाग्रादारभ्य तत्त्वं द्वादशांगुलप्रमाणं पीतवर्णं पृथ्वीतत्त्वं लक्ष्यं कर्त्तव्यम् । अथवा नासाग्रादारभ्य कोटिसूर्यसमप्रभं तेजः । पूर्णमाकाशतत्त्वं लक्ष्यं कर्त्तव्यम् । आकाशमध्ये आकाशोपरि दृष्टिं कृत्वा ध्यानकारणात् ॥

अथवा नासाके अग्रभागसे आरंभ करके बारह अंगुल प्रमाण पीतवर्ण पृथ्वीतत्त्वका लक्ष्य करना चाहिये अथवा नासिकाके अग्रभागसे आरंभ करके कोटिसूर्यकी समान तेजयुक्त पूर्ण आकाशतत्त्वका लक्ष्य करना चाहिये आकाशमें आकाशपर ध्यानकारणसे दृष्टि करनी चाहिये ।

सूर्यं विना सूर्यसम्बन्धिनी सहस्रकिरणपङ्क्तीः पश्यति । अथवा शिवोपरि वृद्धं सप्तदशांगुलप्रमाणं तेजः पुंजलक्ष्यं कर्त्तव्यम्। अथवा दृष्टेरग्रे तत्परं स्वर्णाकारं पृथ्वीतत्त्वं लक्ष्यं कर्तव्यम् । उक्तानां लक्ष्याणां मध्ये यस्य कस्याप्येकस्य लक्ष्यकरणात् वलित

पलिता दूरे भवन्ति । अंगरोगाः विनौषधं दूरीभवन्ति । समग्राः शत्रवः स्वप्नेप्यमित्र-त्रायांति । सहस्रवर्षमायुर्भवति । अपठितं शास्त्रं जिह्वाग्रेणोच्चरति । एतादृशं फलं बहुतरं भवति ॥

सूर्यविना सूर्यसंबन्धिनी सहस्रकिरण देखताहै अथवा शिवोपर वृद्ध सत्रह अंगुल प्रमाण तेजका लक्ष्य करना चाहिये अथवा दृष्टिके आगे तत्पर स्वर्णाकार पृथ्वीतत्त्वका लक्ष्य करना चाहिये उक्त लक्षणोंके मध्यमें जिसकिसी एकके लक्ष्य करनेसे वलीपलित दूर होतीहै अंगके रोग विनाही औषधिके दूर होतेहैं सम्पूर्ण शत्रु मित्र होतेहैं सहस्रवर्षकी आयु होतीहै, विनाही पढे शास्त्र जिह्वाग्रमें उच्चारण करताहै, इत्यादि बहुतसे फल होतेहैं ।

इदानीमन्यतरं लक्ष्यं कथ्यते । मूलकन्दस्थाने ब्रह्मदण्डोत्पन्ना नाडी श्वेतवर्णा ब्रह्मदण्डपर्यन्तमेका ब्रह्मनाडी वर्त्तते । ब्रह्मनाडीमध्ये कमलतन्तुसमानाकारा कोटिसूर्यविद्युत्समप्रभा ऊर्ध्वं चलति । एतादृश्येका मूर्त्तिर्वर्त्तते । तन्मूर्तेर्ध्यानकारणात् अष्ट-

महासिद्धयोऽणिमादयस्तस्य पुरुषस्य समीपमागत्य तिष्ठन्ति ॥

इससमय दूसरा लक्ष्य कहतेहैं मूलकंद स्थानमें ब्रह्मदण्डसे उत्पन्न नाडी श्वेतवर्णा ब्रह्मदण्डपर्यन्त एक ब्रह्मनाडी है ब्रह्मनाडी वर्तती है ब्रह्मनाडीके मध्यमें कमलतन्तुके समान आकारवाली कोटिसूर्यकी समान विद्युतकी समान प्रभावाली ऊर्ध्व गमन करतीहै इसप्रकारकी एक मूर्तिहै उस मूर्तिके ध्यान कारणसे अणिमादि अष्टसिद्धि पुरुषके समीप आनकर स्थित होतीहैं ।

अथ वा ललाटोपर्याकाशमध्ये शुक्लसदृशस्य तेजसो ध्यानकारणात् शरीरसम्बन्धिनः कुष्ठादयो रोगा नश्यन्ति । आयुर्वृद्धिर्भवति । भ्रुवोर्मध्येतिरिक्तवर्णस्यातिस्थूलस्य तेजसो ध्यानकारणाद्बहुलानां पार्थिवानां तत्पुरुषाणां च वल्लभो भवति । जगद्वल्लभोपि भवति । अस्य पुरुषस्यावलोकनेन सर्वेषां दृष्टिः स्थिरा भवति ॥

अथवा ललाटके ऊपर आकाशके मध्यमें शुक्लसदृश तेजके ध्यान कारणसे,शरीरसम्बन्धी कुष्ठा-

दिरोग नाश होतेहैं आयुकी वृद्धि होतीहै, भौंके मध्यमें अतिरिक्त वर्णके अतिस्थूल तेजके ध्यान कारणसे वह बडे २ राजा तथा राजपुरुषोंका प्रिय होताहै इसपुरुषकी सबके ऊपर स्थिर दृष्टि होतीहै इसके अवलोकनसे सबकी स्थिरदृष्टि होतीहै ।

इदानीं शरीरमध्ये नाडीनां भेदाः कथ्यन्ते दश मुख्यनाड्यः । तन्मध्ये द्वयमिडापिंगलासंज्ञकं नासा द्वारे तिष्ठति । सुषुम्णा तालुमार्गे ब्रह्मद्वारपर्यन्तं वहति तिष्ठति।सरस्वती मुखमध्ये तिष्ठति । गांधारी ह्यस्ति जिह्वाकर्णयोर्मध्ये वहल्यौ तिष्ठतः । पूषा लम्बुसेमा नेत्रयोर्मध्येवहल्या तिष्ठतः । शंखिनी लिंगद्वारादारभ्येडामार्गेण ब्रह्मस्थानपर्यंतं तिष्ठतीति।एतादृशनाड्यो दशसु द्वारेषु तिष्ठन्ति । अन्या द्विसप्ततिसहस्रपरिमिता नाड्यो लोम्नां मूलेषु सूक्ष्मरूपेण तिष्ठन्ति॥

इससमय शरीरके मध्यमें नाडियोंका भेद कहतेहैं, दश मुख्य नाडी हैं उनमें दो इडा पिंगला हैं नासाके द्वारे स्थित होतीहैं, सुषुम्ना तालुमार्गमें ब्रह्मरंध्रपर्यन्त वहन करतीहै स्थित होतीहै, सर-

स्वती मुखमध्यमें स्थित होतीहै गांधारीहै जिह्वा-कर्णके मध्यमेंहै दो पहली नाडी स्थित हैं शंखिनी लिंगद्वारसे आरंभकरके इडामार्गसे ब्रह्मस्थानप-र्यन्त स्थित होतीहै यह नाडियें दशों द्वारोंमें स्थित होतीहैं और दो सहस्र नाडियें रोमोंके मूलमें सूक्ष्मरूपसे स्थित होतीहैं ।

इदानीं शरीरमध्ये वायवो दश तिष्ठन्ति । तेषां नामानि कार्याणि कथ्यन्ते। प्राणवायु-र्हृदयमध्ये श्वासोच्छ्वासं करोति । अशन-पानेच्छा भवति । गुदमध्ये समानो वायु-र्वर्तते । सप्त समग्रा नाडीः शोषयति । तथा नाडीशोषणात् रुचिमुत्पाद-यति । वह्निं दीपयति ॥ तालुमध्ये उदानो वायुस्तिष्ठति।स वायुः रत्नं लीलति । पानीयं पिबति । नागवायुः सर्वशरीरे वर्त्तते । तस्मा-द्वायोः शरीरं चालयति । शोकमाप्नोति ॥

अब शरीरमें स्थित दश नाडियोंको कहतेहैं, उनके नाम और कार्य कहतेहैं प्राणवायु हृदयके मध्यमें श्वास उच्छ्वास करतीहै, अशनपानकी इच्छा होतीहै, गुदामें समानवायु वर्तता है सप्त समग्र

नाडियोंको शोषताहै तथा नाडीशोषणसे रुचि उत्पन्न करताहै अग्नि दीप्त करताहै तालुके मध्यमें उदानवायु स्थित होतीहै वह वायु रत्नोंको लीलतीहै पानी पीतीहै नागवायु सबशरीरमें वर्तती है यह वायु शरीरको चलायमान करतीहै शोकको प्राप्त होतीहै।

विविलः कूर्मवायुर्नेत्रमध्ये तिष्ठति। निमेषोन्मेषं करोति । कृकलकर्ता वायुरुद्गारं करोति देवदत्तवायोः जृम्भणं भवति। धनंजयवायोः शब्द उत्पद्यते ॥

विविल कूर्मवायु नेत्रमध्यमें स्थित है निमेषोन्मेषकरातीहै कृकलवायुसे डकार होतीहै देवदत्त जंभाई लाता है धनंजयसे शब्द उत्पन्न होताहै।

इदानीं मध्यलक्ष्यं कथ्यते। श्वेतवर्णम्। अथ च पीतवर्णं रक्तवर्णं वा धूम्राकारं यन्नीलवर्णं वा अग्निशिखासदृशं विद्युत्समानं सूर्यमण्डलसदृशं अर्द्धचन्द्रसदृशं ज्वलदाकाशसमाकारं स्वशरीरपरिमितं तेजोमनोमध्ये तथ्यं कर्तव्यम् ॥ एकस्मिन् लक्ष्ये कृते सति मनोमध्ये स्थितस्य मलस्य

दाहो भवति । मनसः सत्त्वगुणप्रकाशो भवति। पुरुष आनन्दमयो भूत्वा तिष्ठति ॥

अब मध्यलक्ष्य कहतेहैं श्वेतवर्ण, पीतवर्ण, रक्तवर्ण, धूम्रवर्ण, धूम्राकार, नीलवर्ण, अग्निशिखाकी समान, विद्युत्समान, सूर्यमण्डलकी सदृश, अर्द्धचन्द्रकी सदृश ज्वालित आकाशकी समान अपने शरीरके परिमित तेज मनके मध्यमें ध्यान सत्यरूप करना चाहिये एकवारही यदि उसका लक्ष्य करै तो मनके मध्यमें स्थित मलका दाह होजाताहै मनमें सत्त्वगुणका प्रकाश होताहै पुरुष :आनन्दमय होकर स्थित होताहै ॥

इदानीमाकाशभेदाः कथ्यन्ते । ते आकाशः परमाकाशः महाकाशः तत्त्वाकाशः सूर्याकाशः ।: बाह्याभ्यन्तरे निर्मलं निराकारमाकाशलक्ष्यं कर्त्तव्यम् । ततः परं बाह्याभ्यन्तरेष्वनन्धकारसदृशं पराकाशैक्यं लक्ष्यं कर्त्तव्यम् ॥ ततः परं प्रलयकालीनज्वलद्दावानलपूर्णं बाह्याभ्यन्तरे, महाकाशलक्ष्यं कर्त्तव्यम् । ततः बाह्याभ्यन्तरे प्रकाशमानयर्सूसहितं सूर्याकाशं लक्ष्यं

कर्त्तव्यम् । एतेषां लक्ष्याणां कारणात् शरीरं रोगासंसर्गि भवति ॥ तथा वलितपलितं पुण्यं पापं च न भवति ॥

इस समय आकाशका भेद कहतेहैं उनके लक्षण भी कहतेहैं आकाश परमाकाश महाकाश तत्वाकाश सूर्याकाश बाह्यआभ्यन्तर निर्मल निराकार आकाश लक्ष्य करना चाहिये उसके उपरान्त बाह्य आभ्यन्तरमें अन्धकारकी समान पराकाशका एक एक लक्ष्य करना चाहिये उसके उपरान्त प्रलयकालीन दावानलकी समान प्रज्वलित पूर्ण बाह्य अभ्यन्तरमें महाकाशका लक्ष्य करना चाहिये फिर बाहर भीतर प्रकाशमान सूर्यके सहित सूर्याकाश लक्ष्य करना चाहिये इन लक्षणोंके कारणसे शरीर रोगरहित होताहै तथा वलीपलित पुण्यपापसे भी वह रहित होताह ॥

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपंचकम् ।
स्वदेहे यो न जानाति स योगीनामधारकः॥

नौ चक्र कलाधार तीन लक्ष व्योमपंचक वह जो कोई अपने देहमें नहीं जानताहै वह योगी नाममात्रका धारण करनेवालाहै ॥

इदानीं चक्राणामनुक्रमः कथ्यते । आधारे ब्रह्मचक्रम् । आधारोपरि लिंगमूले स्वाधिष्ठानचक्रम् । नाभौ मणिपूरकचक्रम् । हृदये अनाहतचक्रम् । कण्ठस्थाने विशुद्धिचक्रम् । षष्ठं तालुचक्रम् । भ्रुवोर्मध्ये आज्ञाचक्रम् । ब्रह्मस्थाने कालचक्रम् । नवममाकाशचक्रम् । एतत्परं शून्यम् ।

अब चक्रोंका अनुक्रम कहतेहैं. आधारमें ब्रह्मचक्र है, आधारके ऊपर लिंगमूलमें स्वाधिष्ठान चक्र है, नाभिमें मणिपूरक चक्र है, हृदयमें अनाहत चक्र है, कण्ठस्थानमें विशुद्धि चक्र ह, छटा तालुचक्रहै भौंके मध्यमें आज्ञाचक्र है ब्रह्मस्थान में कालचक्र है नौमा आकाशचक्र और उससे परे शून्यहै ॥

इदानीमाधारचक्रस्य भेदाः कथ्यन्त । पादयोरंगुष्ठे तेजसो लक्ष्यकारणात् । दृष्टिः स्थिरा भवति । द्वितीयो मूलाधारः । पादांगुष्ठस्य मूले परपादस्य पार्ष्णिः स्थाप्यते तदाग्निः प्रबलो भवति । एकः पार्ष्णिरादौ

मूलाधारे स्थाप्यते । तस्य पादस्यांगुष्ठ मूले परस्य पादस्य पार्ष्णिः स्थाप्यते। तदाग्निः प्रदीप्यते ॥ तृतीयं गुदाधारस्थानं तन्मध्ये संकोचविकासाकुंचनकारणात् पवनः स्थिरो भवति॥

अब आधार चक्रके भेद कहतेहैं, दोनों चरणोंके अंगूठेमें तेजकी स्थिति है, उसके लक्षण कारणसे दृष्टि स्थिर होतीहै, दूसरा मूलाधार है, पाद अंगुष्ठके मूलमें परपादकी पार्ष्णि स्थापन कीजातीहै तब अग्नि प्रबल होतीहै, चरणका एक भाग पहले मूलाधारमें स्थापन कियाजाताहै, उसपादके अंगुष्ठमूलमें दूसरे चरणकी एडी स्थापन करै तब अग्नि प्रदीप्त होतीहै, तीसरा गुदाधारस्थान है उसमें संकोच विकास आकुंचनके कारणसे पवन स्थिर होतीहै ॥

अन्यच्च । पुरुषस्य मरणं न भवति । चतुर्थं लिंगाधारं तन्मध्ये लिंगसंकोचनाभ्यासात् पश्चिमदण्डमध्ये प्रज्ञा नाडी भवति। तन्मध्ये पुनरभ्यासकरणान्मनःपवनयोः संचारो भवति । तयोः संचारान्मध्ये ग्रन्थित्रयं

त्रुट्यति । तत्रोटनात् पवनो ब्रह्मकमलमध्ये पूर्णो भूत्वा तिष्ठति । ततो वीर्यस्तम्भो भवति । पुरुषः सदैव युवा भवति । पंचम उद्गीर्याणां स्वाधिष्ठानं तत्र बन्धनान्मलमूत्रयोर्नाशो भवति ।षष्ठो नाभ्याधारः।तस्मिन् स्थाने प्राणवायोर्निरोधात् षडपि कमलान्यूर्ध्वमुखानि विकसंति ॥

औरभी पुरुषका मरण नहीं होता, चौथा लिंगाधार है उसमें लिंगके संकोचनके अभ्याससे पश्चिमदंडके मध्यमें प्रज्ञानाडी है, उसमें फिर अभ्यासके कारणसे मन पवनका संचार होताहै उनके संचारके मध्यमें तीन ग्रंथी टूटजातीहैं उनके टूटनेसे पवन ब्रह्मकमलके मध्यमें पूर्ण होकर स्थित होताहै, तब वीर्य स्तम्भन होताहै, पुरुष सदा युवा होताहै, पांचवा उद्गीर्ण नामक स्वाधिष्ठान है,उसके बंधनसे मलमूत्रका नाश होजाताहै छठा नाभि आधार है, उसस्थानमें प्राणवायुके निरोधसे छहों कमल ऊर्ध्वमुख हो खिलते हैं ॥

अष्टमं कण्ठाधारः । तत्र जालंधरो बन्धो दीयते । तस्मिन् सतीडायां पिंगलायां

पवनः स्थिरो भवति। नवमो घंटिकाधारः। तत्र जिह्वाग्रं लग्नं भवति। ततोमृतकलाया अमृतं स्रवति। तदमृतपानात् शरीरमध्ये रोगसंचारो न भवति। दशमं ताल्वाधारः। तन्मध्ये वानंदोल्लहनं च कृत्वा लंबिकाप्रवेशे सति तालुनिमग्ना जिह्वा तिष्ठति। एकादशो जिह्वाधारः। तस्मिन् जिह्वाग्रेण मन्थनं क्रियते तस्मिन् कृतेतिमधुरं पानीयं स्रवति। तदा च कवित्वच्छन्दोनाटकादिविषयज्ञानमुत्पद्यते।

आठवां कण्ठाधार है उसमें जालंधर बन्ध दिया जाताहै ऐसा होनेसे इडापिंगलामें वायु स्थिर होजाताहै, नौमा घांटिकाधार है उसमें जिह्वाग्र लग्न होताहै तब अमृतकलासे अमृत टपकताहै उस अमृतके पानसे शरीरमें रोगका संचार नहीं होता, दशवां तालु आधार है इसमें आनन्द प्राप्त करके लम्बिकामें प्रवेश होताहै ऐसा होनेसे तालुमें निमग्न होकर जिह्वा स्थित होतीहै, ग्यारहवां जिह्वा आधार है उसमें जिह्वाग्रसे मन्थन कियाजाताहै ऐसा करनेपर मधुर

जल स्रवित होताहै इससे कवित्त छन्द नाटकादिका ज्ञान सम्यक् प्रकारसे उत्पन्न होताहै ।

तदुपरि द्वादशदन्तयोमध्ये दन्ताधारः । तस्मिन् स्थाने जिह्वाया अग्रं घटीमात्रं वलात्कारेण स्थाप्यते । तस्मिन् सति साधकस्य समग्रा रोगा नश्यन्ति॥

इसके ऊपर बारह दन्तके मध्यमें दन्ताधारहै उसस्थानमें उस जिह्वाका अग्रभाग बलपूर्वक एक घडीभी वलात्कारसे स्थापन कियाजाय तो साधकके सम्पूर्ण रोग नाश होजातेहै ॥

त्रयोदशो नासिकाग्राधारः। तस्मिन् लक्ष्ये कृते सति मनः स्थिरं भवति । चतुर्दशो नासामूलाधारः।तस्मिन् दृष्टेः स्थैर्यकारणात्षष्ठे मासि स्वीयन्तेजः प्रत्यक्षं भवति । तेजसः प्रत्यक्षत्वे पार्थिवं सकलं बन्धनं तुटयति। पञ्चदशो भ्रुवोर्मध्याधारस्तस्मिन् दृष्टेः स्थिरीकरणात् कोटिकिरणाः स्फुरंति। षोडशो नेत्राधारः।अयमंगुल्यग्रेण चाल्यते। तदभ्यासात् । पृथ्वीमध्ये यत्किंचिन्तेजो

वर्त्तते। तत्सर्वं तेजो दृष्टिविषयं भवति। तद्दर्शनात्पुरुषः सर्वज्ञो भवति॥

तेरहवां नासिकाके अग्रका आधार है उसमें लक्ष्य करनेपर मन स्थिर होताहै, चौदहवां नासा मूलाधारहै उसमें दृष्टिके स्थिर करनेसे छठे महीनेमें अपना तेज प्रत्यक्ष होजाताहै तेजके प्रत्यक्ष करनेमें पार्थिव बन्धन टूटजातेहैं, पन्द्रहवां भौंके मध्यमें आधार है उसमें दृष्टि स्थिर करनेसे अनन्त किरणें स्फुरायमान होतीहैं, सोलहवां नेत्राधारहै यह अगुलीके अग्रभागसे चालित होताहै इसके अभ्याससे पृथ्वीमें जो कुछ तेज है वह सब तेज दृष्टिगोचर होताहै उसके दर्शनसे पुरुष सर्वज्ञ होता सब कुछ जानताहै॥

इदानीमष्टांगयोगविचारः कथ्यते। यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधिरिति। एतेषां लक्षणानि कथ्यन्ते। शान्तिः। षण्णामिन्द्रियाणां जयः।स्वल्पाहारः। निद्राजयः। शीतोष्णजयः। एते यमाः।नियमाःखलु चापलभावान्निवार्यस्थैर्यं स्थाप्यते। एकांते सेवनम्। प्राणिमात्रे

समा बुद्धिः । औदासीन्यं कस्यापि वस्तुन इच्छा न कर्त्तव्या यथालाभसंतोषः । परमेश्वरनाम न विस्मरणीयम् । मनोमध्ये दैन्यं कर्त्तव्यम् । इति नियमाः ॥

अब अष्टाङ्गयोगका विचार कहतेहैं यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि यह अंगहैं इनके लक्षण कहतेहैं शान्ति-मनसहित ज्ञान इन्द्रियोंका जय करना, आहार स्वल्प, निद्राजय, शीतजय, उष्णताका जय करना यह यमहैं, इन्द्रियोंकी चपलता निवारण करके उनकी स्थिरता स्थापन करनी, एकान्त सेवन, प्राणीमात्रमें समान बुद्धि, उदासीनता अर्थात् किसी वस्तुमें इच्छा न करनी यथालाभ सन्तोष रखना, परमेश्वरके नामका न विसारना, मनमें नम्रता करनी यह नियम हैं ॥

आसनलक्षणं बहुषु ग्रन्थेषु निरूपितमस्ति तेनात्र न निरूप्यते । प्राणायामस्तु सुकुमारेण साधितुं न शक्यते अतस्तस्य नाममात्रं कथ्यते । प्रत्याहारः प्रत्यतो मनः संसारान्निवर्त्यात्मनि स्थाप्यते ॥ मनोमध्ये

ये विकारा उत्पद्यन्ते । तेपि निवारणीयाः । अनेकचमत्कारिणी बुद्धिरुत्पद्यते । सांगोपांगं ध्यानं च बहुतरं प्रागुक्तम् । तेनात्र नोच्यते ॥

आसनका लक्षण बहुतसे ग्रंथोंमें निरूपण कियाहै वह पद्मासन, भद्रासन आदि हैं प्रसिद्ध होनेके कारण यहां हम उनको निरूपण नहीं करतेहैं प्राणायाम सुकुमार अंगवाले साधन नहीं करसकते इसकारण उसका नाममात्र कहतेहैं प्रत्याहार यह कि संसारसे मन निवृत्त करके आत्मामें स्थापन कियाजाताहै मनके मध्यमें जो विकार हैं वेभी निवारण करने चाहियें अनेक चमत्कार बुद्धि उत्पन्न होतीहै ध्यान धारणादि पहले कहचुके इससे यहां नहीं लिखते ॥

इदानीं पिंडब्रह्मांडयोरैक्यमस्ति तस्मात् ब्रह्माण्डमध्ये ये पदार्थास्तेपि पिंडमध्ये सन्तीति कथ्यन्ते । पदस्तले तलं वर्त्तते । पादोपरि तलातलं वर्त्तते। गुल्फयोर्महातलं वर्त्तते । जंघामध्ये सुतलं वर्त्तते । जानुमध्ये वितलं वर्त्तते । ऊर्वोर्मध्येऽतलं वर्त्तते॥

इससमय पिंडब्रह्माण्डकी एकताहै ऐसा जाननेसे ब्रह्माण्डके मध्यमें जो पदार्थहैं वेभी पिण्डके मध्यमें हैं सो कहतेहैं पादतलमें तल चरणके ऊपर तलातल दोनों गुल्फोंमें महातल जंघाओंमें सुतल जानुमध्यमें वितल ऊरुओंके मध्यमें अतलकी भावना करनी यह क्रमसे ऊपरी भागहै ॥

इदानीं शरीरमध्ये लोकत्रयं कथ्यते । मूलाधारे भूर्लोकः । लिंगाग्रे भुवर्लोकः । लिंगमध्ये स्वर्लोकः ॥

इससमय शरीरके मध्यमें त्रिलोकीहै सो कहतेहैं मूलाधारमें भूलोक, लिंगाग्रमें भुवर्लोक और लिंगमध्यमें स्वर्लोक है ॥

इदानीमुपरितनं लोकचतुष्कं कथ्यते । पृष्ठदंडांकुरे महर्लोकः । दण्डच्छिद्रमध्ये जनलोकः । तद्दण्डनाडीमध्ये तपोलोकः । दण्डकमलमध्ये सत्यलोकः । अथ ब्रह्माण्डमध्ये चतुर्दशलोकानि स्थानानि तान्यपि पिंडे वर्त्तन्ते ।शरीरमध्ये द्वौ कुक्षी द्वे सक्थिनी वक्षःस्थलं कंठमूलं कंठमध्यं लंबिकामूलं तालुद्वारं तालुमध्यं ललाटमध्ये शृंगा-

टिका कपोलमध्ये कमलिनीमध्ये ब्रह्मरंध्र-कमलिन्यस्त्रिकूटस्थानम् ॥ एवमेकाविंशति स्थाने एकविंशतिब्रह्मांडानि वसंति ॥

इससमय तनके ऊपरीभागमें चारों लोक कहतेहैं पीठके दंडाकुरमें (वांसेमें) महर्लोक, दण्डके छिद्रमें जनलोक, उस दण्डकी नाडीमें तपोलोक, दण्डकमलके मध्यमें सत्यलोक है ब्रह्माण्डमें जो चौदह लोक और उनके स्थान हैं वहभी पिण्डमें कहतेहैं शरीरके मध्यमें दो कोख दोनों हंसली वक्षस्थल कंठमूल कंठका मध्य लम्बिका (नाडी विशेष) मूल, तालुका द्वार, तालुका मध्य, माथेमें शृंगाटिका (नाडीविशेष) कपोलमध्यमें कमलिनी मध्यमें ब्रह्मरंध्र कमलिनी त्रिकूटस्थान है इन इक्कीसस्थानमें इक्कीस ब्रह्माण्डहैं ॥

इदानीं सप्तद्वीपानि पिंडमध्ये कथ्यन्ते ॥ मज्जामध्ये जंबुद्वीपः। अस्थिमध्ये शाकद्वीपः। शिरामध्ये शाल्मलिद्वीपः । मांसमध्ये कुशद्वीपः। त्वचामध्ये क्रौंचद्वीपः। शरीरस्थलोममध्ये गोमेदद्वीपः। नखमध्ये पुष्करद्वीपः॥ एतानि द्वीपानि मध्ये तिष्ठन्ति ॥

अब इस पिंडमें सात द्वीप कहतेहैं मज्जा (चरबी) में जम्बूद्वीप अस्थिमध्यमें शाकद्वीप, नाडियोंमें शाल्मलिद्वीप, मांसमें कुशद्वीप, त्वचामें क्रौंचद्वीप, नखूनोंमें पुष्करद्वीपहै, यह द्वीप इस शरीरके मध्यमें स्थित हैं ॥

इदानीं पिंडमध्ये सप्तसमुद्राः कथ्यन्ते ॥ प्रस्वेदमध्ये क्षारसमुद्रः। ललाटमध्ये क्षीरः समुद्रः। वाङ्मध्ये मधुसमुद्रः। कफमध्ये दधिसमुद्रः। मेदोमध्ये घृतसमुद्रः। रसमध्ये इक्षुरससमुद्रः।वीर्यमध्ये स्वादुसमुद्रः।पादमध्ये कूर्मस्थानम् ॥

अब शरीरमें सात समुद्र कहतेहैं पसीनेमें क्षारसमुद्र, ललाटमें क्षीरसागर, वाणीमें मधु (शहत) का समुद्र, कफमें दहीका समुद्र, मेदमें घीका समुद्र, रसमें इक्षुरसका समुद्र, वीर्यमें स्वादु जलका समुद्रहै पादके मध्यमें कूर्मस्थान है ॥

इदानीं नवद्वारेषु नवखण्डानि कथ्यन्ते ॥ मुखे भरतखंडः। नासिकयोः किन्नरखंडनरहरिखंडौः नेत्रयोः केतुमालभद्राश्वौ।कर्णयोः हिरण्मयखंडरम्यकखंडौ। गुदे कुरुखंडः लिंगे इलावृतखण्डः ॥

इससमय नौ द्वारोंमें नौ खण्ड कहतेहैं मुखमें भरतखण्ड, नासिकामें किन्नरखण्ड नरहरिखण्ड, दोनों नेत्रोंमें केतुमाल और भद्राश्वखण्ड, दोनों कानोंमें हिरण्मयखंड रम्यकखण्ड, गुदामें कुरु-खण्ड, लिंगमें इलावृत खण्डहै ॥

इदानीमष्टकुलपर्वताः कथ्यन्ते।मेरुदण्डमध्ये मेरुमंदरः।ब्रह्मकपाटमध्ये कैलासः।पृष्ठमध्ये हिमाचलः।वामस्कन्धे मलयाचलः।दक्षिण-स्कन्धे मन्दराचलः।दक्षिणकर्णे विन्ध्याचलः। वामकर्णे मैनाकः।ललाटमध्ये श्रीशैलः।अपरे शैलाः हस्तयोः पादयोरंगुलीनां मूलेषु वर्त्तंते॥

इससमय आठ कुलपर्वत कहतेहैं मेरुदण्ड (कमरका वांसा) में मेरुमन्दर, ब्रह्मकपाटमें कैलास, पीठमें हिमाचल,वामस्कंधमें मलयाचल, दक्षिणस्कंधमें मन्दराचल, दक्षिणकानमें विन्ध्या-चल, वामकानमें मैनाक, ललाटमें श्रीपर्वत दूसरे पर्वत हाथपैरकी अंगुलियोंके मूलमें वर्ततेहैं ॥

इदानीं शरीरमध्ये नव नाड्यस्तिष्ठान्ति तन्मध्ये नवनदीनां स्थानानि वर्त्तन्ते।गंगा-यमुने वितस्ता चन्द्रभागा सरस्वती विपा-

शा शतह्रदा इरावती नर्मदा।अपरा नद्यो न-दानि स्रोतांसि तटाकानि वापीकूपादि सप्ततिसहस्रनाडीमध्ये तिष्ठन्ति । सप्तविं-शतिनक्षत्राणि द्विसप्ततिकोष्ठकाभ्यन्तरे वसंति । द्वादश राशयः । मेषः वृषः मिथुनः कर्कः सिंहः कन्या तुला वृश्चिको धनुर्मकर-कुम्भमीनाः।नव ग्रहाः । आदित्यसोममंगल-बुधगुरुशुक्रशनिराहुकेतवः।पंचदशतिथयोत्र मध्ये वसंति ॥

शरीरमें जो नौ नाडी हैं उनमें नौ नदियोंके स्थान हैं गंगा, यमुना, वितस्ता, चन्द्रभागा, सरस्वती, विपाशा, शतह्रदा, इरावती, नर्मदा, तथा दूसरे नदी नद हैं, यह स्रोत सरोवर बावडी कूपादि सत्तर सहस्र नाडियोंके मध्यमें स्थित हैं सत्ताईस नक्षत्र बहत्तर कोष्ठके मध्यमें निवास कर-तेहैं, बारह राशियें मेष, बृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ, मीन। नव ग्रह, रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु और पन्द्रह तिथियें इसकेमध्यमें निवासकरतीहैं ॥

यथा समुद्रमध्ये लहरी वर्त्तते । तथा शरीरमध्ये कूर्म्मीनाम लहरी भवति । ऊर्म्यश्चलास्ततः चलनं भवति । तन्मध्ये समग्रं तारामण्डलं वर्त्तते । त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवताः। बाहुरोममध्ये वसंति । हृदयरोममध्ये तक्षकः महानागः।शंखःतक्षकः।वासुकिः।अनन्तशेषः एते नागा वसंति। उदररोममध्ये अपरे नागा वसंति गुणगन्धर्वकिन्नराप्सरो विद्याधरगुह्यकाः।शरीरमध्ये अनेकतीर्थानि वसंति॥

जैसे समुद्रके मध्यमें लहरें उठती हैं ऐसेही शरीरके मध्यमें कूर्म नाम लहरी है तरंगें जैसे चल हैं वैसे इसमें ऊर्मी उठतीहैं इसके मध्यमें सम्पूर्ण तारामंडल हैं तैंतीस कोटि देवता हैं यह सब बाहुके रोमोंमें निवास करतेहैं हृदयमें तक्षक है महानाग तक्षक शंख धारक वासुकी अनन्तशेष इतने नाग निवास करतेहैं उदररोममें दूसरे नाग निवास करतेहैं गुण गंधर्व किन्नर अप्सरा विद्याधर गुह्यक तथा शरीरमध्यमें अनेक तीर्थ हैं ॥

अश्रुपातमध्ये मेघमण्डलं वसति । अनंताः सिद्धयो बुद्धयश्च प्रकाशमध्ये वर्त्तन्ते । चंद्र-

सूर्यौ द्वयोर्नेत्रयोर्मध्ये वर्त्तेते। अनेकवनस्पतिगुल्मलतातृणानि जंघारोममध्ये वसंति। पुरुषस्य नृत्यदर्शनात् गीतश्रवणात्। वल्लभवस्तुनो दर्शनात्। यः आनन्द उत्पद्यते सः स्वर्गलोकः कथ्यते। रोगपीडितो दुर्जनेभ्यः पुरुषस्य यत् दुःखमुत्पद्यते तद्बहुतरं नरकं कथ्यते॥

अश्रुपातमें मेघमंडल निवास करताहै अनन्तसिद्ध बुद्धि प्रकाशमें वर्तती है दोनों नेत्रोंमें चन्द्रसूर्य निवास करतेहैं अनेक वनस्पति गुल्म लता तृण जंघारोममें निवास करतेहैं पुरुषोंको नृत्यदर्शन गीतश्रवण तथा प्रियवस्तुके दर्शनसे जो आनंद होताहै वह स्वर्गलोक है रोगपीडित तथा दुर्जनोंसे जो दुःख होताहै वही बहुत नरक कहा-जाताहै॥

अथ च यत्कर्मकरणात् मनोमध्ये शंका न भवति तत्कर्म मुक्तिकारणम्। इदानीं राजयोगाच्छरीरे यादृशानि चिह्नानि भवन्ति तानि कथ्यन्ते। सकलरोगनाशः सकलपृथ्वीं पश्यति। तदनंतरं ज्ञानमुत्पद्यते॥

समग्रा भाषा जानाति। ततः पुरुषस्य देहो वज्रमयो भवति। सर्पदंशेन मरणं न भवति। ततः पुरुषस्य बुभुक्षापिपासानिद्रोल्लताशीतोष्णता बाधां न कुर्वन्ति। वाक्सिद्धिर्भवति विद्युत्पाते काचिद्बाधापि न भवति॥

जो कर्म करनेसे मनमें शंका नहीं होती वही कर्म मुक्तिका कारण है, अब राजयोगसे शरीरमें जो चिह्न होतेहैं सो कहतेहै सब रोगोंका नाश होताहै सब पृथ्वीका दर्शन करताहै, फिर ज्ञान उत्पन्न होताहै सम्पूर्ण भाषाओंका ज्ञाता होताहै फिर उस पुरुषका देह वज्रमय होजाताहै सर्पके काटनेसेभी उसका मरण नहीं होता, फिर उस पुरुषको भूख प्यास निद्रा वेग शीत गरमी बाधा नहीं करती, वाक्सिद्धि होतीहै, बिजलीके पातमें भी कभी उसे बाधा नहीं होती॥

तदनंतरं पवनरूपी पुरुषो भवति। समग्रां पृथ्वीं दृष्ट्या पश्यति। अणिमाद्यष्टसिद्धिर्भवति। महापद्माद्या नव निधयः समीप आगच्छन्ति। आकाशमध्ये दशसु दिक्षु गमनागमने भवतः बलं भवति। परमेश्वरं

समीपे पश्यति । करणे हरणे सामर्थ्यं भवति ॥

इसके उपरान्त यह पुरुष पवनरूपी होजाताहै अपनी दृष्टिसे सब पृथ्वीको देखताहै अणिमादि अष्ट सिद्धि इसको प्राप्त होतीहैं महापद्मादि नव निधियें इसके समीप आतीहैं आकाशके मध्य दशों दिशामें इसका गमनागमन होताहै बल होताहै परमेश्वरको समीपमें देखताहै करण हरणका सामर्थ्य होताहै ॥

इदं गुरु भक्तेः फलं आत्ममध्ये मनसो विश्रामकरणमिच्छता पुरुषेण सद्गुरोः सेवां कृत्वा सावधानं मनः करणीयम् । अभ्यासबलात् परमप्राप्तिः । तेन स्वशिष्यमनसः स्वास्थ्यं कर्त्तव्यम् । चन्द्रसूर्य्यौ यावत्पिंडे निश्चलौ भवतः ॥

यह गुरुभक्तिका फल है आत्मामें मनके विश्रामकारणकी इच्छा करनेवाले पुरुष सद्गुरुकी सेवा करके मन सावधान करै अभ्यासके बलवान् होनेसे परम आनन्दकी प्राप्ति होतीहै इसकारण मनसे अपने शिष्यको सावधान करना चाहिये

जबतक चन्द्र सूर्य शरीरमें [दोनों नेत्र वा श्वास प्रश्वास] निश्चल हो ॥

सम्यक्स्वभावकिरणोदयचिद्विलासग्रस्तं स्वशांतिसमतां स्वयमेव याति । ग्रस्ते स्ववेगनिचये पदपिंडमैक्यं सत्यं भवेत्समरसं गुरुवत्सलां च ॥ १ ॥

सम्यक् प्रकारसे स्वभावके किरणोदयका जो चिद्विलास है, शांतिवालोंकी चंचलता स्वयंही ग्रसित होजातीहै, और वेगवान् इस पिंडके ग्रस्त होनेमें तत्कालही वह समरस गुरुवत्सलताका पात्र होताहै ॥ १ ॥

इदानीमवधूतपुरुषस्य लक्षणं कथ्यते । यस्य हस्ते धैर्यदण्डः खर्परं शून्यमासनम् । योगैश्वर्येण संपन्नः सोवधूत उदाहृतः ॥ २ ॥

अब अवधूत पुरुषका लक्षण कहतेहैं जिसके हाथमें धैर्यका दंड खर्पर (खप्पड़) शून्य आसन है वही योगऐश्वर्यसे सम्पन्न अवधूत है ॥ २ ॥

भेदाभेदौ यस्य भिक्षा भरणं जारणं तथा । एतादृशोपि पुरुषः सोवधूत उदाहृतः ॥ ३ ॥

भेद अभेद जिसकी भिच्छाहै तथा भरण और

जारणभी जिसकी भिक्षा है ऐसा पुरुष अवधूत कहाताहै ॥ ३ ॥

आत्मा ह्यकारो विज्ञेयो वकारो भववासना ।
धूतं संतापनं प्रोक्तं सोवधूतो निगद्यते ॥ ४ ॥

अकार आत्मा है वकार भववासना है धूतका अर्थ सन्ताप देना है ऐसा पुरुषही अवधूत कहाजाताहै अर्थात जो आत्माका ज्ञान करके संसारकी वासनाको कम्पित करताहै वह अवधूत है ॥ ४ ॥

अकारार्थो जीवभूतो वकारार्थोथ वासना ।
एतद्द्वयं जपं कुर्यात्सोवधूत उदाहृतः ॥ ५ ॥

अकारका अर्थ जीवभूत वकारका अर्थ संसारकी वासना इनको जो कम्पितकर जय करलेताहै उसीका नाम अवधूत है ॥ ५ ॥

यः पुरुषो द्वितीयं न पश्यति केवलं स्वस्वरूपं पश्यति सोवधूतः । अथवा यस्य मनश्चंचलभावं न दधाति सोवधूतः कथ्यते । यन्न दृश्यते तदव्यक्तमित्युच्यते । तदव्यक्तं प्रत्यक्षेण पश्यति । यत्किंचिद्दृश्यते तत्सर्वं ग्रस्तातिमुक्तमिति ज्ञानं पश्यति । सोवधूतः कथ्यते । अवधूततनुः सोमो निराकारपदे

स्थितः। सर्वेषां दर्शनानां च स्वस्वरूपं प्रकाश्यते ॥ १ ॥ सत्यमेकमजं नित्यमनंतमक्षयं ध्रुवम्। ज्ञात्वा ह्येवं वदेद्धीमान् सत्यवादी स कथ्यते ॥ २ ॥

जो पुरुष दूसरेको नहीं देखता केवल अपने आत्माकोही देखताहै वही अवधूत है, अथवा जिसका मन चंचल नहीं है वही अवधूत है, जो नहीं दीखता वही अव्यक्त है वह उस अव्यक्तको प्रत्यक्ष देखताहै जो कुछ देखता है, वह सब ग्रस्त अतिमुक्त ऐसे ज्ञानको देखताहै वही अवधूत कहाजाताहै, अवधूतका शरीर सोम है वह निराकार पदमें स्थित है, सबके दर्शनमें वह अपना स्वरूप प्रकाश करताहै ॥ १ ॥ सत्य एक अज नित्य अनन्त अक्षय ध्रुव इसको जानकर जो वैसाही कहताहै वह सत्यवादी कहाताहै ॥ २ ॥

यत्किंचिन्न पश्यति, स एको ह्येवं मनसो विजानाति नाशा न तादृशं पदार्थं ज्ञात्वा काले चेष्टा भवति। स सत्यवादी कथ्यते॥

आत्माके सिवाय यत्किंचित भी नहीं देखता वही एक है इसप्रकार इसका मन अन्यको नहीं

जानता न कुछ आशा करताहै न ऐसे पदार्थको जानकर किसीसमय चेष्टा करताहै वही सत्य-वादीहै ॥

वास्वरे भास्वरे शक्तिः संकोचो भास्वरेपि च । तयोः संयोगकर्त्ता यः स भवेत्सत्य-योगभाक् ॥ ३ ॥

और भास्वर पदार्थमें शक्तिका संकोच करना अर्थात् ऐसे ऐश्वर्यमें भी शक्तिको काममें न लाना इन दोनोंका जो संयोग करताहै वही सत्य योग-भाक् होताहै ॥ ३ ॥

विश्वानीततया विश्वमेकमेव विराजते । संयोगो न सदा यस्य सिद्धयोगी स गद्यते४॥

जो जगतके अनेकत्व होनेपरभी एकही रूपसे विराजमान है और इस जगतसे जिसका कभी संयोग नहीं उसीका नाम सिद्धयोगी है एक देख-नेसे शोक, मोह कुछ नहीं रहता है ॥ ४ ॥

सर्वासां निजवृत्तीनां विस्मृतीर्भजते तु यः । स भवेत्सिद्धसिद्धान्तो सिद्धयोगी स गद्यते ५

जो अपने चित्तकी सब वृत्तियोंको भुलादेताहै वह मानों सिद्धिकी अन्तको पहुंचगया चित्तकी

वृत्तियोंके ही रोकनेका नाम योग है और यह जिसकी रुकजांय वही सिद्ध योगी होताहै॥ ५॥

उदासीनः सदा शान्तो ब्रह्मानन्दमयोपि च। यो भवेत्सिद्धयोगेन सिद्धयोगी स कथ्यते॥ ६॥

सदा उदासीन और शान्तचित्त रहना चाहिये और पूर्ण ब्रह्मानंदमें जो मग्न है वही जानो सिद्ध योगको सिद्धियोंद्वारा प्राप्त हुआहै और ऐसे शान्त महात्माकोही सिद्धयोगी कहाजासक्ताहै ६

अधुना कमलानां तु शृणु संकेतमद्भुतम्। अनेकाकारभेदोत्थं कं स्वरूपात्मकं मलम्। कमलं तेन विख्यातं त्रिविधं तत्र देहगम्॥ ७॥

अब कमलोंका संकेत सुनो जो अनेक आकारके भेदसे युक्त कंस्वरूपात्मक ब्रह्मसत्तायुक्त है इसी कारणसे उसको कमल कहतेहैं यह देहमें स्थित तीन प्रकारके हैं॥ ७॥

अथातः कमलं कथ्यते।

आधारकमलमस्य कमलमिति कं कस्मात्। कमात्मा तस्मात्कमलमिति संज्ञा अस्या-

धारः कमलदलस्य चतुष्टयं भवति । प्रथमं सत्त्वगुणस्य द्वितीयं राजयोगस्य तृतीयं तमोगुणः चतुर्थों दले मनस्तिष्ठति । एत-द्दलचतुष्टयं च संगादात्मा साधु करोति । तस्मिन् कमले निश्चलीकृते सति पुरुषस्य समीपे मरणं न गच्छति ॥

पहला आधार कमल है कमल क्यों कहतेहैं कम् नाम आत्माको जो प्रकाश करै इससे कमल कहतेहैं इस आधारकमलके चार दल हैं पहला दल सत्त्वगुणका, दूसरा रजोगुणी राजयोग सम्पन्न, तीसरा तमोगुणी, चौथा दल मनमें स्थित होताहै इन चार दलके संगसे जो आत्माको साधु कर-ताहै, अर्थात् उसकमलके निश्चल करनेमें पुरुषके समीप मरण नहीं आता आशय इन गुणोंको रोकै॥

इदानीं हृदयकमलभेदाः कथ्यंते। अस्य द्वाद-शदलानि सिद्धपुरुषाः कथयंति । तथा द्विष-शक्तिस्तृतीयलोकांतः सम्यक् समुद्रा खेचरी चिदानन्दाद्वयश्चन्द्रचंद्रिका वेतिना-मान्वितः ॥

अब हृदयकमलके भेद कहतेहैं, सिद्ध पुरुष इसके बारह दल कहतेहैं, तथा द्वेष शक्ति सम्यक् लोकदर्शन, समुद्र, खेचरी, चिदानन्द, अद्वय, चन्द्र, चन्द्रिका इत्यादि इन नामोंसे युक्तहैं ॥

परमात्मना सह रश्मिपुंजप्रकाशः प्रकाशानन्दयोरैक्यं प्रकर्त्तव्यं निरन्तरं स्वयं मनसि महाज्योतिराभाति परमं पदम् ॥

परमात्माके साथ रश्मिपुंज ज्योतिका प्रकाश है प्रकाश और आनन्दकी एकता करनी चाहिये निरन्तर अपने मनसे महाज्योतिकी आभा देखना परम पद है ॥

सदोदितमनश्चन्द्रः सूर्योदयमवेक्षते । तेन ग्रस्तो मनश्चन्द्रः सोपि लिप्यः स्वयं पदे ॥

जिनका सदा उदय हुआ मन चन्द्र प्रकाशरूपी सूर्यका दर्शन करताहै और फिर मनरूपी चन्द्रमा उसीमें लय होताहै अर्थात् तब वह अपने पदमें लीन होताहै ॥

पदमेव महानाग्निर्यमे ग्रस्तं कलामयम् । एवं चन्द्रार्कवह्नीनां संकेतः परमार्थतः ॥

वह पदही महा अग्निहै, जिसमें यह कलामय चन्द्ररूपी मन लीन होताहै, तब आनन्द होताहै,

इसप्रकार चन्द्र, सूर्य और अग्निका परमार्थसे संकेत है ॥

इदानीं योगसिद्धेरनंतरमेतादृशं ज्ञानमुत्पद्यते । यदा नास्ति स्वयं कर्त्ता कारणं न कुलाकुलम् ॥अव्यक्तं न परं तत्त्वमनामा विद्यते तदा ॥ १ ॥

अब योगसिद्धिके उपरान्त ऐसा ज्ञान उत्पन्न होताहै सो कहते हैं, जिससमय यह कर्ता कारण कुल अकुल कुछ नहीं है अहंता नहीं है तब वह अव्यक्त परमतत्त्व जानाजाताहै ॥

अनामा एकः कश्चित्पुरुषो वर्त्तते । अनाम्नश्च परावरः परात्परः परं पदं परमपदात्परं शून्यं शून्यान्निरंजनमनाम्नः पंचगुणास्तेष्वनुतत्त्वमखण्डत्वमनुपर्णदलानामष्टदलानां मध्य एकं कठिनं भवति । तदष्टदलं कमलं हृदये तिष्ठति । ते उभये हृदये तिष्ठतः । प्रथमे दले शब्दास्तिष्ठन्ति । द्वितीयदले स्पर्शः । तृतीये दले रूपं तिष्ठति।चतुर्थे दले रसस्तिष्ठति । पंचमे दले

गन्धं तिष्ठति। षष्ठदले चित्तं तिष्ठति। सप्तमे दले बुद्धिस्तिष्ठति। अष्टमे दलेहंकारस्तिष्ठति। एतदष्टदलमध्ये पृथिव्याकारो वर्त्तते। अथ च तत्कमलमध्ये मुखं तिष्ठति। अस्य कमलस्य नादात्प्रकाशो भवति॥

कोई अनाम एक पुरुष है अनामके परावर परात्पर परमपद, तथा परमपदसेभी परे शून्य, शून्यसे निरंजन यह अनामके पांच गुण हैं उनमें अतनुत्व और अखण्डत्व यह दो दल मुख्य हैं। इन आठ पर्ण दलोंके मध्यमें एक कठिन है वह आठ दलका कमल हृदयमें स्थित है वे दोनोंही हृदयमें स्थित हैं पहले दलमें शब्द स्थित है, दूसरेमें स्पर्श, तीसरेमें रूप, चौथेमें रस, पांचवेंमें गन्ध, छठेमें चित्त, सातवेंमें बुद्धि, आठवें दलमें अहंकार स्थित है इन आठों दलोंमें पृथ्वीका आकार है कमलमध्यमें उसका मुख है इसकमलके नादसे प्रकाश होताहै ध्यान करनेसे इस कमलका उद्धार होताहै॥

प्रकाशानंतरं कमलमूर्ध्वमुखं भवति। तथा सूर्यप्रकाशानन्तरं तदा सरोमध्ये कमलं

विकसाति । तथेदमप्यात्मा प्रकाशानन्त-रमूर्ध्वमुखं विकसति । तन्मध्ये परमानन्द-रूपा भूमिर्भवति । तस्याहं सोहमिति संज्ञा तस्या मध्ये स्वात्मनो ध्यानाद्दिनेदिने ह्यायुर्वर्द्धते । रोगो दूरे भवति ॥

प्रकाशके उपरान्त कमल ऊर्ध्वमुख होताहै जैसे सूर्यके विकाशसे कमल खिलजाताहै ऐसेही यहभी आत्माके प्रकाश होनेपर ऊर्ध्वमुख होकर खिलजाताहै उसके मध्यमें परमानन्दरूपा भूमि प्रकाश पातीहै उसकी हंसो हंसः ऐसी संज्ञा है उसके मध्यमें आत्माके ध्यानसे दिन २ आयु बढतीहै रोग दूर होताहै ॥

गुणाः कर्तृत्वं ज्ञातृत्वमभ्यासत्वं कलत्वं सर्वज्ञत्वं प्रकाशस्य गुणाः सकलः निष्कलः सर्वैः सह समता विश्रांतिः तत एतादृश-मुत्पद्यते । आद्यः आत्मा आत्मन आकाशः आकाशाद्वायुः वायोस्तेजः तेजसो जलं जलात् पृथ्वी । अत्रात्मनः पञ्चगुणाः अग्राह्यः, अनन्तः, अवाच्यः, अगोचरः,

अप्रमेयश्च। आकाशस्य पञ्चगुणाः। प्रवेशः निष्क्रमणं, छिद्रं, शब्दाधारः, भ्रांतिनिलयत्वम्। महावायोः पञ्चगुणाः। चलनं शेषसंचारः, स्पर्शः, धूम्रवर्णता, तेजःसंचरः तेजसः पञ्चगुणाः। दहनं, ज्वालरूपं, उष्णता, रक्तो वर्णः॥

गुण ये हैं कर्तृत्व,ज्ञातापन, अभ्यासपन, कलापन, सर्वज्ञपन,प्रकाशके गुण सम्पूर्णता,निष्कलता सबके साथ समता, विश्राम यह उत्पन्न होतेहैं। अब इस आत्मासे आकाश आकाशसे वायु वायुसे तेज तेजसे जल जलसे पृथ्वी हुईहै आत्माके पांच गुण हैं अग्राह्य, अनन्त, अवाच्य, अगोचर (इन्द्रियोंसे परे) अप्रमेय (इयत्तारहित) आकाशके पांच गुणहैं प्रवेशकरना, निकलना, छिद्र, शब्दका आधारत्व, भ्रांतिनिलय यह पांचगुण हैं।वायुके पांचगुण हैं चलना, शेषसंचार, स्पर्श, धूम्रवर्णता, तेजसंचरण। तेजके पांच गुणहैं दहन, ज्वालारूप, उष्णता रक्तवर्ण॥

अपां पंच गुणाः। प्रवाहः शिथिलता द्रवः मधुरता श्वेतवर्णः। पृथिव्याः पंच गुणाः।

स्थूलता साकारता कठिनता गन्धवत्ता पीतवर्णता अवयवत्वमनन्यत्वं चेति । परावरस्य पंच गुणाः–निश्चलत्वं निष्कर्मत्वं परिपूर्णत्वं व्यापकत्वमकलत्वं चेति । परमपदस्य पंच गुणाः–नित्यं निरन्तरं निराकारं निर्निकेतनं निश्चलत्वं चेति । शून्यस्य पञ्चगुणाः–लीनता घूर्णता मूर्छा उन्मनीभावः अलसत्वं चेति । निरंजनस्य पंच गुणाः–सत्या सहभावा सत्ता स्वरूपता समता चेति । इदानीं पिंडोत्पत्तिः कथ्यते॥

जलके पांच गुण हैं प्रवाह, शिथिलता द्रवता मधुरता श्वेतवर्णता पृथ्वीके पांच गुण हैं स्थूलता, साकारता, कठिनता, गंधता, पीतवर्णता अवयवत्व और अनन्यत्वभी कोई कहतेहैं । परावरके पांच गुण हैं निश्चल होना, निष्कर्मत्व होना, परिपूर्णत्व होना, व्यापक होना, अकलत्व होना । परमपदके पांच गुण हैं नित्यता, निरन्तरता, निराकारता, निर्निकेतनता, निश्चलता । शून्यके पांच गुण हैं लीनता, घूर्णता मूर्छा, उन्मनीभाव, अलसत्व । निरंजनके पांच गुण हैं सत्या,

सहभाव, सत्ता, स्वरूपता, समता । अब पिंडोत्पत्ति कहतेहैं ॥

अनादितः परमात्मा परमात्मनः परमानंदः परमानंदात्प्रबोधः प्रबोधाच्चिदुदयः चिदुदयात्प्रकाशः । तत्र परमात्मनः पंच गुणाः– अक्षयः, अभेद्यः, अच्छेद्यः, अदाह्यः, अविनाशी । परमानंदस्य पंचगुणाः–स्फुरणः,किरणः,विस्फुरणः, अहंता, हर्षवत्त्वम्। प्रबोधस्य पंच गुणाः– लयः, उल्लासः, विभासः, विचारः, प्रभा । चिदुदयस्य पंच शरीरमध्ये पंच महाभूतानि ॥

अनादिसे परमात्मा परमात्मासे परमानन्द परमानन्दसे प्रबोध प्रबोधसे चित्तका उदय चित्तके उदयसे प्रकाश होताहै, वहां परमात्माके पांच गुण हैं–अक्षय, अभेद्य, अच्छेद्य, अदाह्य, अविनाशी। परमानन्दके पांच गुण हैं स्फुरना, किरण, विस्फुरण, अहंता, हर्षता। प्रबोधके पांच गुण हैं लय, उल्लास, विभास, विचार, प्रभा । चिद्वुदयके पंच शरीरमें पंच महाभूत हैं ॥

तेषां गुणाः कथ्यन्ते तत्र पृथिव्या गुणाः—अस्थिमांसनाडीलोमानि वाक् । तत्रोदकगुणाः—लाला, मूत्रं, शुक्रं, रक्तं, प्रस्वेदः । तेजसो गुणाः— क्षुधा तृषा निद्रा ग्लानिः आलस्यम् । वायोर्गुणाः— धावनं मज्जनं निरोधनं प्रसारणमाकुंचनं चेति । आकाशस्य गुणाः—रागद्वेषौ भयं लज्जा मोहः । तदनंतरमेकादशीका बुद्धिरुत्पद्यते । मनोबुद्धियहंकाराश्चित्तं चैतन्यं चेति । एते पंचप्रकारा अंतःकरणस्य । मनसः ये च गुणाः संकल्पविकल्पमूर्खत्वालसता मननं चेति ॥

उनके गुण कहतेहैं उसमें पृथ्वीके गुण–अस्थि, मांस, नाडी, रोम, वाक् । उदकके–गुण लार, मूत्र, शुक्र, रक्त, पसीना । तेजके गुण–क्षुधा, तृष्णा, निद्रा, ग्लानि, आलस्य। वायुके गुण–धावन, मज्जन, निरोध, प्रसारण, (फैलाना) सकोडना । आकाशके गुण–भय, लज्जा, मोह । इसके उपरान्त ग्यारहवीं बुद्धि उत्पन्न होतीहै, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्र, चैत्यन्यता यह अन्तःकरणके । मनके पांच प्रकार हैं संकल्प , विकल्प, मुर्खत्व, अलसता,

मनन, यह मनके गुण कहेहैं। इनका जानना प्रत्येकको उचित है इन गुणोंके जानने और ध्यानमें रखनेसे बहुत कुछ बोध होताहै ॥

बुद्धेः पंच गुणाः। विवेको वैराग्यं शान्तिः सन्तोषः क्षमा चेति।अहंकारस्य पंच गुणाः। अहं ममेति एतस्य दुःखं स्वतंत्रता। चित्तस्य पंचगुणाः। धृतिः स्मृतिः। रागद्वेषौ मतिः। चैतन्यस्य पंचगुणाः। आर्षं विमर्शः धैर्यं चिंतनं निस्पृहत्वम्। अतः परं कुलपंचकस्य भेदाः कथ्यन्ते। सत्त्वं रजः तमः कालः जीवनम्। तत्र सत्त्वगुणाः। दया धर्मः कृपा भक्तिः श्रद्धा चेति। रजसो-गुणाः। त्यागः। भोगः शृंगारः स्वार्थः। वस्तुसंग्रहश्चेति ॥

बुद्धिके पांच गुण हैं विवेक, वैराग्य, शान्ति, सन्तोष, क्षमा, अहंकारके पांच गुण हैं अहंता, ममता, प्रत्यक्ष, दुःख, स्वतंत्रता, इत्यादि चित्तके पांच गुण हैं धृति, स्मृति, राग, द्वेष मति। चैतन्यके पांच गुण हैं ऋषित्व, विचार, धीरता,

चिन्तन, ममत्वत्याग, अब कुलपंचकके भेद कहते हैं, सत्त्व, रज, तम, काल, जीवन, उसमें सत्त्वगुण दया, धर्म, कृपा, भक्ति श्रद्धा है, रजके गुण त्याग, भोग, शृंगार, स्वार्थ, वस्तुसंग्रहकरना है ॥

तमसो गुणाः विवादः कलहः शोकः बंधः वञ्चनम्।कालस्य गुणाः कलना कल्मषं भ्रान्तिः प्रसादः उन्मादः। जीवस्य गुणाः जाग्रदवस्था स्वप्नावस्था सुषुप्तावस्था तुरीयावस्था । तुरीयातीतावस्था तदनंतरमेतादृशमेकज्ञानमुत्पद्यते । इच्छा क्रिया माया प्रकृतिः । वाचा । इच्छायाः पंच गुणाः । उन्मन्यवस्था । वांछा चित्तं वेष्टनम् विभ्रमः। क्रियायाः पंच गुणाः । स्मरणं उद्यमः उद्वेगः। कार्यनिश्चयः। सत्कुलाचारत्वम् ॥

तमके गुण विवाद, कलह, शोक, बन्ध, वचन हैं कालके गुण कलना, कल्मष, भ्रांति, प्रसाद, उन्माद हैं जीवके गुण जाग्रदवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति अवस्था, तुरीयावस्था तुरीयातीत अवस्था, इसके पीछे इनमें एक ज्ञान प्रगट होताहै इच्छा कार्यका करना, माया, प्रकृति, वाचा इच्छाके

पांच गुण हैं उन्मनी अवस्था, वांछा, चित्तबन्धन विभ्रम । क्रियाके पांच गुणहैं स्मरण, उद्यम, चित्तमें उद्वेग, कार्यका निश्चय, सत्कुलाचारपना॥

मायायाः पंच गुणाः । मदमात्सर्योदयः । कीर्तिः असत्यभावाः । प्रकृतेः पंच गुणाः आशा तृष्णा स्पृहा कांक्षा मिथ्यात्वम् । वाचायाः पंच गुणाः । परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी । मातृका तदनंतरमेतादृशं ज्ञानमुत्पद्यते । कर्मकारः । चन्द्रः। सूर्यः । अग्निः एतत्पंचकं प्रत्यक्षं कर्त्तव्यम् तत्र कर्मणः पंच-गुणाः कामस्य गुणाः रतिः प्रीतिः क्रीडा कामना अनुस्तुता ॥

मायाके पांच गुण हैं मद, मात्सर्य, अहंता, कीर्ति, असत्यभावोंकी प्राप्ति प्रकृतिके पांच गुण हैं आशा, तृष्णा, लालसा,आकांक्षा असत्यपना, वाचाके पांच गुण हैं परा, (नादरूप) पश्यन्ती, (नादसेसूक्ष्म दुर्निरूप हृदय गामिनी) मध्यमा, (योगियोंके ही दर्शनयोग्य बुद्धिमें प्राप्त वा हृदयमें उदय होनेसे मध्यमा) वैखरी, (मुखनिर्गत) मातृकावर्ण, मालात्मक, फिर इसप्रकारका

ज्ञान उत्पन्न होताहै कर्म काम और चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यह पांचौं प्रत्यक्ष करनी, चाहिये कर्मके पांच गुण हैं यही विचार कर कामके गुण रतिप्रीतिक्रीडा, कामना, अनुस्तुतिता कहेहैं ॥

इदानीं चंद्रस्य षोडशकलाः कथ्यन्ते । दल्लोला कल्लोलिनी उश्वलिनी उन्मादिनी तरंगिणी पोषयंती लंपटा लहरी लोला लेलिहाना प्रसरन्ती प्रवृत्तिः प्लुवन्ती प्रवाहा सौम्या प्रसन्ना ॥

इससमय चन्द्रमाकी षोडशकला कहते हैं दल्लोला, कल्लोलिनी, उश्वलिनी, उन्मादिनी, तरंगिणी, पोषयन्ती, लम्पटा, लहरी, लोला, लेलिहाना, प्रसरन्ती, प्रवृत्ति, प्लुवन्ती, प्रवाहा, सौम्या, प्रसन्ना यह सोलह गमनार्थनाम हैं, इसकारण इनके नाम नहीं लिखे ॥

चन्द्रस्य सप्तदशमी कला वर्त्तते तस्या नाम निवृत्तिसमेता कला कथ्यते । इदानीं सूर्यस्य कलाः कथ्यन्ते । तपनी ग्रासका उग्रा अकोचनी शोषणी प्रबोधिनी घस्मरा आकर्षिणी तुष्टिवर्द्धिनी कूर्मी रेषा किरणवती

प्रभवति सूर्यस्य त्रयोदशी कला विद्यते ।
तस्य नाम निजकलास्वप्रकाशा च ॥

चन्द्रमाकी एक सत्रहवीं कला है वह निवृत्ति है उस समेत सब सत्रह होतीहैं अब सूर्यकी कला कहतेहैं, तपनी, ग्रासिका, उग्रा, अकोचनी, शोषणी, प्रबोधिनी, घस्मरा (भक्षणकरनेवाली) आकर्षिणी, (आकर्षण करनेवाली) तुष्टिवर्द्धिनी, कूर्मी, रेखा, किरणवती, यह सूर्यकी बारह कला हैं यह कलाके प्रकाशाऽनुसार नाम हैं। तेरहवीं कला निज कला प्रकाशनामवाली है ॥

इदानीमग्निसंबंधिन्यो दश कलाः कथ्यन्ते ।
दीपिका ज्वाला विस्फुलिंगिनी प्रचंडा पाचि-
का रौद्री दाहिका रावणी । शिखावती ।अग्ने-
रेकादशी निजकला ज्योतिः संज्ञा वर्त्तते ॥

अब अग्निसम्बंधी दश कला कहतेहैं दीपिका ज्वाला, विस्फुलिंगिनी, (चिनगारीवाली) प्रचण्डा,पाचिका(पकानेवाली) रौद्री,दाहिका, रावणी, (शब्द करनेवाली) शिखावती, ग्यारहवीं निज कला, ज्योति, संज्ञा है ॥

इदानीं योगस्य माहात्म्यं कथ्यते । गुरोरनु-
ग्रहात् शास्त्रस्य पठनात् आचारकरणात्

वेदांतरहस्यश्रवणात् ध्यानकरणात् उपवासकरणात् चतुरशीत्यासने साधनात् वैराग्यस्योत्पत्तेः नैराश्ये करणात् हठयोगस्य करणात् इडापिंगलयोः पवनधारणात् महामुद्रादिदशमुद्रासाधनात् मौनकरणात् वनवासात् बहुतरक्लेशकरणात् बहुकालयंत्रमंत्रादिसाधनात्तपःकरणात् बहुतरार्पणदानात् आश्रमाचारपालनात् संन्यासग्रहणात् षड्दर्शनग्रहणात् शिरोमुंडनात् अन्योपायकरणात् योगतत्त्वं न प्राप्यते ॥

इससमय योगका माहात्म्य कहतेहैं गुरुके अनुग्रहसे शास्त्रके पढनेसे आचारके करनेसे वेदान्तके रहस्यश्रवणसे ध्यान, व्रत चौरासीआसनका साधन वैराग्यकी उत्पत्ति, निराशकाकारण, हठयोगके करने, इडा पिंगलामें पवनके धारण करने महामुद्रा तथा दशमुद्राके साधनसे मौनके कारण वनमें निवास करने साधनमें क्लेश भोगने बहुकालतक यन्त्र मन्त्र साधन तथा तप करने, सर्वस्वदानकरने, आश्रमके आचार पालन

करने, संन्यासग्रहण करने, षड्दर्शनग्रहण करने शिर मुण्डित करने तथा दूसरे शास्त्रोक्त अनेक उपायोंके करनेसे योग प्राप्त होताहै, विना साधनके योग नहीं होता वह कैसे होताहै इसपर कहतेहैं ॥

स तु योगः गुरुसेवया प्राप्यते । गुरुकृपातः पात्राणां दृढानां सत्यवादिनाम् ॥ कथनाद्दृष्टिपाताद्वा सांनिध्यादवलोकनात् । सद्गुरुप्रसादात् सम्यक् परमं पदं पाप्यते । अत एवं वचः प्रोक्तं न गुरोरधिकं परम् ॥१॥

वह तो योग गुरुसेवासे प्राप्त होताहै गुरु इन्द्रिय दमनसे विद्या विद्यार्थियोंकी आशा दृढ करनेसे कहाताहै, उन सत्यवादियोंके कथन दृष्टिपात तथा सान्निध्य (निकटता) करने तथा उनकी कृपादृष्टि से सिद्धि होतीहै। गुरुकी प्रसन्नतासे भली प्रकार परमपद प्राप्त होताहै इसी कारण यह कहागया है कि गुरुसे अधिक कुछ नहींहै ॥ १ ॥

वाङ्मात्राद्बोधदृक्पाताद्यः करोति शमं क्षणात् । प्रस्फुटद्भ्रांतिहृत्तोषं स्वच्छं वंदे गुरुं परम् ॥ २ ॥

जो वाणीमात्रसेही क्षणमें बोध और दृष्टिपात से शान्ति करताहै जो हृदयकी भ्रान्तिको तत्काल हरणकर सन्तोष देताहै उसपरम गुरुको प्रणाम करताहूं ॥ २ ॥

सम्यगानन्दजननः सद्गुरुः सोभिधीयते । निमेषार्द्धं वा तत्पादं यद्वाक्यादवलोकनात् ॥ ३ ॥

जो भलीप्रकार आनंद करताहै वही गुरु कहा जाताहै निमेषमात्रभी जिनके चरण देखने वचन श्रवणकरने और कृपादृष्टिके अवलोकनसे ॥ ३ ॥

स्वात्मा स्थिरत्वमायाति तस्मै श्रीगुरवे नमः । नानाविप्लवविश्रान्तिः कथनात्कुरुते ततः ॥४॥ सद्गुरुः स तु विज्ञेयो न तु वै प्रियजल्पकः ॥ ५ ॥

अपनी आत्मा स्थिर होजाती उस श्रीगुरुके निमित्त प्रणामहै, अपने कथनसेही जो अनेक उपद्रव शान्त करतेहैं ॥४॥ ऐसेही को गुरु जानना चाहिये प्रियवादीको नहीं जो लल्लोपत्तो करताहै५

अत एव परमपदस्य प्राप्त्यर्थं सद्गुरुः सेव्यः सर्वदा यः पुरुषः सत्यवादी भवति । निरंतरं

गुरुसेवातत्परो भवति। यस्य मनसि पापं न भवति। स्वाचाररतः स्नानादिशीलो भवति। कापट्यं न भवति यस्य वंशपरंपरा ज्ञायते। एतादृशस्य सद्गुरोः संगतिः कर्त्तव्या तेन पुरुषस्य मनः शांतिं प्राप्नोति। अथ च यस्य मनोमध्ये स्थिर आनन्द उत्पद्यते सोपि सद्गुरुः कथ्यते। कस्यापि दुःखं न दीयते। प्राणिमात्रेण सह मैत्री क्रियते कस्यापि दोषं न कथयति सोपि सद्गुरुः कथ्यते॥

इसकारण परमपदकी प्राप्तिके निमित्त सद्गुरुकी सेवा करनी चाहिये जो पुरुष सदा सत्यवादी और निरन्तर गुरुकी सेवा करताहै जिसके मनमें पाप नहीं है जो अपने आचारमें रत है जो स्नान आदिशीलहै जो कपटी नहींहै जिसके वंशकी परंपरा ज्ञात है ऐसे पुरुषको गुरुकी संगति करनी चाहिये तो उस पुरुषके मनमें शांति प्राप्त होतीहै और जिसके मनमें स्थिर आनंद प्रगट है वहभी सद्गुरु कहाजाताहै किसीको दुःख नहीं देता

प्राणीमात्रके संग मित्रता करताहै किसीका दोष प्रकाश नहीं करता वहभी सद्गुरु कहाताहै ॥

अज्ञातकुलशीलानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
उपदेशं न गृह्णीयादन्यथा नरकं ध्रुवम् ॥

जिन यती ब्रह्मचारियोंके कुल शील न जान लिये गयेहैं तबतक उनके उपदेशको न ग्रहण करे अन्यथा नरक होगा ॥

यस्य वचासि मनसिधृते सति स्वात्मनः परमेश्वरस्यैक्यं भवति। एतादृशो मनोमध्ये निश्चयो भवति।तं सद्गुरुं विजानीयात् विकल्प एतादृशो यथा समुद्रमध्ये महत्तरं कल्लोलाडम्बरम् । प्रपंचे वासना तादृशी यथोदकमध्ये महत्तरंगाः । तादृशस्य संसारसागरस्य यः स्ववाक्यनात्रा परं पारं प्रापयाति। स सद्गुरुः कथ्यते ॥

जिसके मन वचन वशीभूत हैं, जो आत्माकी परमेश्वरकी एकता कियेहैं, ऐसा जिसके मनमें निश्चय है उसीको सद्गुरु जाने और विकल्प ऐसाहै जैसे सागरमें बडी तरंग उठकर फिर उसीमें लय होजातीहै संसारमें वासनाभी सागरकी लहरकी

समान है ऐसे संसारसागरको जो अपनी ज्ञान रूपी नावसे पार करदेताहै वही सद्गुरु कहाताहै ॥

यस्य पुरुषस्य मनोऽखण्डे परमपदे लीनं भवति । यः पुरुषः स्वकुलं त्रिविधात्तापान्निवर्त्य परमे मुक्तिपदे रक्षति । एतादृशस्य पुरुषस्य श्रवणाद्दर्शनात् समग्राविघ्ना नश्यन्ति । दिनेदिने कल्याणं भवति । निष्कलंका बुद्धिरुत्पद्यते । इदं योगशास्त्रस्य रहस्यं समस्तशास्त्रप्रमेयस्य मनः यथांधकारस्य मध्ये दीपतेजः प्रविशाति । तथा शास्त्रमध्ये मनो प्राविशाति । यस्य राज्ञो मध्ये कलहो नास्ति । यस्मिन् दृष्टे देशिकत्रासो न भवति । तस्य मनः शुद्धं भवति । यस्य पृथ्व्यां वीतिर्भवाति । यस्य मनोमध्ये सत्पुरुषस्य वचो विश्वासो भवति । यो राजा सदानंदरूपो भवति ॥

जिस पुरुषका मन अखण्ड परम पुरुषमें लीन होताहै जो पुरुष अपने कुलको दैहिक दैविक भौ-

तिक तीन प्रकारके तापोंसे निवृत्त करके मोक्षपदमें रक्षा करताहै ऐसे पुरुषके श्रवण दर्शनसे सम्पूर्ण विघ्न नाश होते हैं । दिन दिन कल्याण होताहै निष्कलंका बुद्धि उत्पन्न होतीहै । यह योगशास्त्रका रहस्य है । इससे सब योगका विषय प्रकाशित होजाताहै जैसे अंधकारमें दीपकका तेज प्रवेश करजाताहै, इसीप्रकार इससे शास्त्रमें मन प्रवेश होजाताहै जिस राजाके मनमें क्लेश नहीं है जिसके देखनेसे किसी ब्रह्मचारीको त्रास नहीं होता उसका मन शुद्ध होताहै जिसकी पृथ्वीमें भय नहीं ईति नहीं होतीहै जिसके मनमें सत्पुरुषके वचनका विश्वास होताहै जो राजा सदानंदरूपहै ॥

यस्य पार्श्वे प्रत्यक्षमनेकमनोहारिवस्तूनि तिष्ठंति। एतादृशस्य राज्ञ इदं योगरहस्यं कथनीयम् । न स्नेहान्न भयान्न लोभान्न मोहान्न धनाद्बलान्न मैत्रीभावान्नौदार्यान्न सौंदर्यान्न सेवनात् । सामान्याग्रे योगो न कथनीयः । यः परनिंदारतो भवति । दुराचारो भवति । दुर्भैक्ष्यान्यस्य वस्तु न ददाति ।

य असत्यं वदति। यो योगनिन्दां करोति। यस्य मनोमध्ये दया न भवति। यः कलहप्रियो भवति। स्वकार्यकरणे सावधानो भवति।गुरोः कार्यकरणे न दत्तचित्तो भवति। एतादृशस्याग्रे न योगः क्रियते न पठ्यते ॥

जिसके समीप प्रत्यक्ष अनेक मनोहर वस्तुएँ स्थित होतीहैं ऐसे राजाको यह योगका रहस्य कहना चाहिये,स्नेह, भय,लोभ,मोह, धन, बल, मैत्रीभाव, उदारता, सुन्दरता,सेवाके कारणसे समानतासे यह योग न कहना चाहिये। जो परनिन्दामें रत है, दुराचारी है, जो दुर्मित्र दूसरेकी वस्तु नहीं देता, जो असत्य कहता है, जो योग और योगियोंकी निन्दा करताहै, जिसके मनमें दया नहीं है जो कलहप्रिय है अपनाही कार्य करनेमें सावधान है गुरुके कार्य करनेमें दत्तचित्त नहीं होता, ऐसेके आगे न योग किया जाता न पढाजाता है ॥

शृण्वन् प्रीतादिकान् शब्दान् पश्यन् रूपं मनोहरम्। जाग्रत् स्फुरन् स्पृशन्स्पर्शंमृदुप्रियम् स्वादान् मनोरमान् भ्राम्यन् देशान्।

मनोरमान् भाषमाणः रममाणः स्वलीलया ।
भावाभावविनिर्मुक्तो सर्वग्रहविवर्जितः॥ १ ॥

प्रीति आदिके शब्दोंको सुनताहुआ मनोहर रूप देखता हुआ जाग्रत् अवस्थामें स्पर्शके योग्य मृदु प्रिय पदार्थोंको स्पर्श करता मधुर प्रिय स्वादोंको चखताहुआ मनोहर देशोंमें भ्रमण करताहुआ मनोहर शब्द बोलताहुआ सुमधुर रमताहुआ अपनी लीलासे भावाभावसे रहित तथा ग्रहादिसे निर्मुक्त हो ॥

सदानंदमयो योगी सदाभ्यासी सदा भवेत् ।
विरुद्धदुःखदे देशे विरूपेतिभयानके ॥ १ ॥

सदा आनंदमयरूप योगी सदा अभ्यासी रहै जो देश अपने विरुद्ध दुःखद अर्थात् अपने प्रतिकूल और भयानक हो ॥ १ ॥

इष्टाद्यनिष्टसंस्पर्शे रसे च लवणादिके।प्रत्यादावपि गंधे च कंकोष्णादि विवर्जयेत् ॥ २ ॥

इष्ट अनिष्टके संसर्गमें तथा लवण कटु तिक्त कषायादिके रसमें गंधादिके प्रत्यय तथा ठंडे गरम पदार्थको वर्जदेना चाहिये ॥ २ ॥

सर्वदैव सदाभ्यासः समः स्यात्सुखदुःखयोः ।
एवं योगस्य कर्म्माणि संकल्परहितानि च ३॥

सदा योगाभ्यास करै सुख दुःखमें समान रहै इसप्रकार संकल्परहित होकर सब योगके कर्म करै ॥ ३ ॥

गच्छन्नृणां च संस्पर्शात्तपः कुर्वन्न लिप्यते ।
उत्पन्नतत्त्वबोधस्य ह्युदासीनस्य सर्वदा॥४॥

जातेहुए मनुष्योंके संसर्गको त्यागै तप करता रहै लिप्त न हो जिस समय उदासीनतासे वर्तते वर्तते बोध होजाय ज्ञानका प्रकाश होजाय॥ ४ ॥

तदा दृष्टिविशेषः स्याद्विविधान्यासनानि च।
अंतःकरणजा भावा योगिनो नोपयोगिनः ५॥

तब उससमय उसकी दृष्टि विशेष होजातीहै अनेक प्रकारके आसन तथा अंतःकरणके भाव योगीको विदित होजातेहैं ॥ ५ ॥

सर्वराजपदस्थस्य निष्कलाध्यात्मवेदिनः ।
यद्यत्प्रयत्ननिःपायं तत्तत्सर्वमकारणम् ॥ ६ ॥

जो निष्कल अध्यात्मशास्त्रके ज्ञाता हैं चाहे वह सम्पूर्ण राजपदमें स्थित हैं उनके जो जो यत्न

हैं वे उनको कर्मरूप होकर बाधते नहीं किन्तु वे सब अकारण होतेहैं ॥

विलासिनीनां मनोहारिगानश्रवणात् । अतिसौंदर्यकामिनीनां रूपदर्शनात् । कस्तूरीकर्पूरयोर्गंधग्रहणात् । मनःशैत्यकारि कोमलवस्तुनः स्पर्शकारणात् । अतिमाधुर्यं चित्ते करोति । तादृशः स्वादनात् । अनेकदेशानां साध्वसाधुस्थानदर्शनात् । मित्रेण सह कोमलवचनात् । शत्रुणा सह कठिनवचनात् । यस्य मनसि हर्षो वा द्वेषो न भवति स पुरुष ईश्वरोपदेशिको ज्ञेयः ॥

स्त्रियोंके मनोहर गान श्रवण करनेसे स्त्रियोंके अतिसुन्दर रूप देखनेसे कस्तूरी कपूरकी गन्ध ग्रहण करनेसे मनकी शीतल करनेवाली कोमल वस्तुके स्पर्श करनेसे चित्तमें मधुराई करनेवाले स्वादके चाखनेसे अनेक देशोंमें साधु असाधुओंके स्थान दर्शनसे मित्रके संग कोमल अलापसे शत्रुके संग कठिन वचनसे जिसके

मनमें हर्ष वा द्वेष नहीं होता वही पुरुष ईश्वरके ज्ञानका उपदेश करनेवाला जानना चाहिये ॥

स्वलीलया वदति चलति भावाभावयो- श्चित्तमुदासीनं भवति कस्यांचिद्वार्तायां हर्षविषादं न करोति यस्य मनः सहजानंदे मग्नं भवति। तेन पुरुषेण दृष्टिः स्थिरा कर्त्तव्या । आसनं दृढं कर्त्तव्यम् । पवनः स्थिरः कर्त्तव्यः । एतादृशः कश्चिन्नियमः । सिद्धस्य नोक्तः मनःपवनाभ्यां यदा सहजानंदस्वस्वरूपेण प्रकाश्यते स सहजयोगः कथ्यते । ते राजयोगमध्य इति चक्रवर्त्तिकथनम् ॥

जो अपनीही लीलासे बोलता चलताहै भाव अभावमें जिसका चित्त उदासीन रहताहै किसी बातमेंभी हर्ष विषाद नहीं करताहै जिसका मन सहजानन्दमें मग्न रहताहै उसी पुरुषको स्थिर दृष्टि करनी चाहिये वही इसका अधिकारी है। दृढ आसन करना चाहिये पवन स्थिर करनी चाहिये, ऐसा कोई फिर सिद्धोंके लिये नियम

नहीं है मन पवनका जब स्वाभाविक आनंद होकर अपने स्वरूपसे प्रकाशित होताहै उसीका नाम सहजयोग है राजयोगमें वही सहजयोग है ऐसा चक्रवर्तिका कथन है ॥ इति राजयोगे चन्द्रपरमहंसपरिपूर्णपीठमाहात्म्यप्रकाशकः बिन्दुयोगः समाप्तः ॥ शुभमस्तु ॥

इति श्रीसर्वगुणसम्पन्नपंडितसुखानन्दमिश्रसूरिसूनुपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकासहितो राजयोगे बिन्दुयोगः समाप्तिः ॥ शुभमस्तु ॥ श्रीरस्तु ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय-बंबई.